# नंदिनी सुंदर और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 5 जुलाई 2011 को दिया गया ऐतिहासिक फैसला

अनुवादः

कमल नयन चौबे

रिपोर्टेबल

# भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में
## सिविल ऑरिजिनल ज्यूरिसडिक्शन

**2007 का रिट पिटीशन (सिविल) नंबर 250**

**नंदिनी सुंदर और अन्य** **याचिकाकर्त्ता**

**बनाम**

**छत्तीसगढ राज्य** **प्रतिवादी**

# आदेश

I

हमने, यानी एक राष्ट्र के तौर पर लोगों ने, खुद को प्रभुसत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में संगठित किया है। हमारा मकसद यही रहा है कि हम संविधान के दायरे में, इसके लक्ष्यों और मूल्यों के अनुसार अपनी गतिविधियाँ चलाएँ। हम यह चाहते हैं कि लोकतांत्रिक भागीदारी का फायदा हम तक- हम सब तक- पहुँचे। ऐसा होने पर हम अपनी विरासत और सामूहिक बुद्धिमता के हिसाब से राष्ट्रों के समूह में अपने लिए अच्छा स्थान हासिल कर सकते हैं। इसलिए, हमें संविधानवाद के अनुशासन और सख्ती का भी पालन करना चाहिए। इसका मूल तत्व सत्ता की जवाबदेही है। इसमें लोगों की सत्ता राज्य के अंगों और उसके कर्त्ताओं (या ऐजेंटों) में निहित होती है। इस सत्ता का उपयोग सिर्फ संविधान के मूल्यों और दर्शन को बढ़ावा देने के लिए ही किया जा सकता है। यह केस दिखाता है कि संवैधानिक लोकतंत्र में सत्ता के सैद्धांतिक प्रयोग के वायदे और छत्तीसगढ़ के वास्तविक हालात के बीच कितनी गहरी खाई है। इस केस के प्रतिवादी, छत्तीसगढ़

राज्य का यह दावा है कि उसे संविधान से यह अधिकार मिला हुआ है कि वह लगातार और अंतहीन रूप से मानवाधिकारों के गहरा उल्लंघन करे। उसके अनुसार, वह चाहे तो इसके लिए माओवादी/नक्सलवादी चरमपंथियों के तरीकों को भी अपना सकता है। छत्तीसगढ़ राज्य का यह भी दावा है कि उसके पास यह शक्ति है कि वह तथाकथित माओवादी चरमपंथियों के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए आदिवासी क्षेत्रों के हजारों युवकों को हथियारों से लैस कर सकता है। इन युवकों में से अधिकांश लोग निरक्षर हैं या बहुत ही कम पढ़े-लिखे हैं। इन्हें बिना किसी प्रशिक्षण के या बहुत कम प्रशिक्षण के साथ अस्थायी पुलिस अफसरों के रूप में नियुक्त किया गया है। इन्हें इस बारे में बहुत कम जानकारी है कि पुलिस बल की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए 'चेन ऑफ कमांड' या आदेशों की श्रृंखला किस तरह काम करती है।

**2.** जब हम, हमारे सामने आए इन मामलों पर विचार कर रहे थे तो हमें जोसेफ कोनार्ड के प्रसिद्ध उपन्यास *'हॉर्ट ऑफ डार्कनेस'* की याद आई। कोनार्ड ने अंधकार के तीन स्तरों की कल्पना की है: (i) जंगल का अंधकार, जो जीवन और उदात्त या लोकोत्तर (sublime) के बीच संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है; (ii) संसाधनों के लिए औपनिवेशिक विस्तार का अंधकार; और अंत में (iii) ऐसा अंधकार, जिसका प्रतिनिधित्व अमानवता और बुराई करती है। मान लीजिए कि किसी को सर्वोच्च ताकत दे दी जाती है जिसके लिए वह किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है। इसके साथ ही असीम अधिकार हासिल करने वाले को यह गुमान हो जाता है कि जो वह कह रहा है वही सबसे व्यवहारिक और अनिवार्य चीज है। ऐसे में वह इस तीसरे अंधकार का शिकार हो जाता है। जोसेफ कोनार्ड का उपन्यास अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय (या ट्रोपिकल) जंगलों के संसाधनों की सम्पन्नता वाले अंधकार में स्थित है। यहाँ यूरोपीय ताकतें अपनी साम्राज्यवादी-पूँजीवादी और विस्तारवादी नीतियों के साथ सक्रिय हैं। ये ताकतें हाथी दाँत के अपने क्रूर व्यापार को ज्यादा फैलाने की कोशिश करती हैं। जोसेफ कोनार्ड यह बताते हैं कि इस काम को सही बताने वाले लोगों की दिमागी अवस्था कैसी होती है। कोनार्ड के अनुसार इनकी दिमाग की अवस्था बहुत ही वीभत्स और घिनौनी होती है। ये लोग बिना अपनी ताकत का इस्तेमाल करते वक्त किसी विवेक, मानवता या संतुलन का ध्यान नहीं रखते हैं। उपन्यास का मुख्य चरित्र कुर्ट्ज मरते वक्त कहता है 'हॉरर!, हॉरर!'[1] (बीभत्स, बीभत्स)। कोनार्ड अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार

[1] जोसेफ कोनार्ड, *हार्ट ऑफ डार्कनेस एंड सेलेक्टेड शॉर्ट* फिक्शन (बारनेस एंड नोबल क्लासिक्स, 2003)

पर 1890 से 1910 के बीच कांगों की वास्तविक परिस्थितियों के बारे में बताते हैं। उनके अनुसार, यह 'मानव चेतना के इतिहास पर धब्बा लगाने वाली भ्रष्टतम लूट थी।[1]

**3.** हमने छत्तीसगढ़ के हालात के बारे में प्रतिवादियों द्वारा दिए गए तर्कों को विस्तार से सुना। इससे हमारे सामने यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई कि प्रतिवादियों ने राज्य के कार्य करने के ऐसे तरीकों को अपनाया है जिससे संवैधानिक मूल्यों की गंभीर उपेक्षा हुई है। इससे राष्ट्रीय हित को गंभीर नुकसान हो सकता है। खासतौर पर इससे माानवीय गरिमा, समूहों के बीच बंधुत्व तथा राष्ट्रीय एकता और अखंडता सुनिश्चत रखने के इसके लक्ष्यों को गहरी चोट पहुँच सकती है। मानवता के सामूहिक अनुभव से यह बात स्पष्ट होती है कि असीमित सत्ता खुद अपना सिद्धांत बन जाती है। अपनी सत्ता का उपयोग ही इसका मकसद बन जाता है। इसका नतीजा लोगों के अमानवीय बनाने के रूप में सामने आया है। इसके कारण साम्राज्यवादी शक्तियों ने प्राकृतिक संसाधनों के लिए धरती का असीमित दोहन किया है। दरअसल इसी के कारण दुनिया को दो भयानक विश्व युद्धों का सामना करना पड़ा है। असीमित सत्ता के बारे में मानवता के इस सामूहिक अनुभव को देखते हुए आधुनिक संविधानवाद यह प्रावधान करता है कि राज्य की सत्ता का उपयोग करने वाले यह दावा नहीं कर सकते हैं कि राज्य किसी कानूनी रोक-टोक के बगैर किसी के भी खिलाफ हिंसा कर सकता है; उन्हें अपने नागरिकों के खिलाफ इस तरह का दावा करने की इजाजत तो बिल्कुल ही नहीं दी जा सकती है। इसके अलावा, आधुनिक संविधानवाद ने इस अवधारणा को भी स्वीकार किया है कि हर नागरिक की स्वाभाविक मानवीय गरिमा होती है। इस केस की सुनवाई से छत्तीसगढ़ के कुछ जिलों की घटनाओं और परिस्थितियों की एक धुँधली तस्वीर (hazy picture) समाने आती है। हम इससे सिर्फ इसी नतीजे पर पहुँच पाए कि प्रतिवादी हमें संवैधानिक कार्रवाई के ऐसे रास्ते की ओर ले जा रहे हैं, जहाँ इन सबके अंत में हमें भी यह कहना पड़ेगा 'हॉरर, हॉरर' (बीभत्स, बीभत्स)।

**4.** लोग राज्य की सत्ता के खिलाफ या दूसरे लोगों के खिलाफ बिना किसी कारण के संगठित होकर हथियार नहीं उठाते हैं। हम अपना अस्तित्व कायम रखने की चाह से निर्देशित होते हैं; और थॉमस हॉब्स के अनुसार, हमारी सामूहिक चेतना में यह गहरा डर बैठा रहता है कि कोई ऐसी स्थिति न आ जाए जिसमें कोई कानून ही न हो। इसलिए हम एक व्यवस्था चाहते हैं। लेकिन मान लीजिए कि यह व्यवस्था लोगों को अमानवीय बनाने की कीमत पर आती है और इससे कमजोर, गरीब और वंचित लोगों पर हर तरह का अन्याय होता है। ऐसे

[1] जोसेफ कोनार्ड, 'ज्योग्रॉफी एंड सम एक्सप्लोर्स', नेशनल ज्योग्रॉफी मैगजीन, वोल्यूम 45, 1924.

हालात होने पर लोग विद्रोह कर देते हैं। यह बात सभी जानते हैं कि छत्तीसगढ़ राज्य का बड़ा इलाका माओवादी गतिविधियों से प्रभावित रहा है। बड़े पैमाने पर ये खबरें भी आती रही हैं कि छत्तीसगढ़ के इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को माओवादियों की विद्रोही गतिविधियों और राज्य द्वारा इस विद्रोह के दमन के लिए की जाने वाली कार्रवाईयों से बहुत ज्यादा दुःख और परेशानी का सामना करना पड़ा है। दरअसल, छत्तीसगढ़ राज्य के हालात ऐसे हैं कि इससे किसी भी विवेकशील व्यक्ति को गहरी पीड़ा होती है। हमें इस बात से दोहरी निराशा हुई कि प्रतिवादियों ने लगातार इस बात पर जोर दिया कि राज्य के पास एकमात्र यही विकल्प है कि वह दमन के सहारे शासन करे। इससे एक एसी व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें हर व्यक्ति को संदेह की नजर से देखा जा सकता है। इसमें मानवाधिकारों की बात करने वाले हर व्यक्ति को संदिग्ध और माओवादी घोषित कर दिया जाता है। इस केस में प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए इस खतरनाक और जहरीले नजरिए से यह निष्कर्ष सामने आता है कि इतिहासकार रामचंद्र गुहा, प्रसिद्ध एकेडेमिक नंदिनी सुंदर, सिविल सोसायटी के नेता स्वामी अग्निवेश, अच्छी छवि वाले पूर्व नौकरशाह ई. ए. एस. शर्मा– इन सभी के साथ माओवादी या माओवादियों के साथ सहानुभूति रखने वाले लोगों जैसा बरताव किया जाना चाहिए। हम स्पष्ट तौर पर यह कहना चाहते हैं कि हमें यह देखकर बहुत हैरत हुई छत्तीसगढ़ राज्य और इसके कुछ वकील संवैधानिक सीमाओं के बारे में बहुत ही कम जानते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य ने यह दावा किया कि राज्य के बहुत से इलाकों में मौजूद अमानवीय स्थिति के बारे में सवाल पूछने वाले हर व्यक्ति को माओवादी या माओवादियों के हमदर्द के रूप में देखा जाना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही इसने यह भी दावा किया कि इसे संवैधानिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए छत्तीसगढ़ के लोगों के खिलाफ बेरहम हिंसा की नीतियों को लागू करने के लिए संवैधानिक मान्यता की जरूरत है।

**5.** हमारे सामने यह बात पूरी तरह स्पष्ट है और अधिकांश प्रबुद्ध लोग भी हमसे सहमत होंगे कि छत्तीसगढ़ के लोग समस्या नहीं हैं। इस बात को व्यापक तौर पर स्वीकार किया गया है कि छत्तीसगढ़ के लोगों के मानवाधिकारों का बड़े पैमाने पर उल्लंघन किया गया है। एक तरफ माओवादियों/नक्सलवादियों ने और दूसरी तरफ राज्य तथा इसके कुछ ऐजेंटों ने इनके मानवाधिकारों का हनन किया है। हम यह भी मानते हैं कि इस हालात के बारे में लगातार सवाल पूछने वाले अच्छी नीयत वाले, विवेकशील और प्रबुद्ध लोगों के साथ भी कोई समस्या नहीं है। दरअसल, राज्य द्वारा अपनाई गई अ–नैतिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इसके कारण उत्पन्न हुई क्राँतिकारी राजनीति ही असली समस्या है। हाल ही में प्रकाशित

हुई एक किताब 'द डार्क साइड ऑफ ग्लोबलाइजेशन' (वैश्वीकरण का कालापक्ष) में यह बताया गया है कि:

*''छह दशकों की संसदीय राजनीति के बाद भी भारत में 'नक्सलवाद' और माओवाद की राजनीति मौजूद है। यह लोकतांत्रिक 'समाजवादी' भारत का एक स्पष्ट विरोधाभास है...। भारत एक ऐसे दशक को पीछे छोड़कर इक्कीसवीं सदी में आया है जिसमें नेहरूवादी समाजवाद की जगह मुक्त बाजार के विकल्प को चुना गया। तेजी से वैश्वीकृत होती अर्थव्यवस्था ने आर्थिक संवृद्धि के साथ ही साथ नई तरह की (और नए क्षेत्रों में) वंचना की स्थिति उत्पन्न की है। इस तरह एक ही जैसे मुद्दों खासतौर पर जमीन से जुड़े मुद्दों ने विरोध की राजनीति और हिंसक आंदोलनों को बढ़ावा दिया है। इन्हीं के कारण सशस्त्र विद्रोहों को भी हवा मिली...। क्या भारत में सरकारें और राजनीतिक दल इस तरह की राजनीति को बढ़ावा देने वाली सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता को समझने में समर्थ हैं या फिर वे एक ऐसे सुरक्षा-केन्द्रित दृष्टिकोण से बँध गए हैं, जो इस तरह की राजनीति को और ज्यादा बढ़ावा देता है?''*

6. यह माना जाता है कि भारत के विभिन्न भागों में चल रहे हिंसक आंदोलन और सशस्त्र विद्रोह की राजनीति का सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, स्थानीय असमानता और इन असमानताओं का दोहन करने वाली एक भ्रष्ट सामाजिक और राज्य व्यवस्था से बहुत ही नजदीकी जुड़ाव है। दरअसल, इस तरह के जुड़ाव के बारे में भारतीय संघ को लगातार चेतावनी भी दी जाती रही है। हाल ही, में भारत के योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों के समूह ने *'डेवेलपमेंट चैलेंजेज इन एक्स्ट्रीमिस्ट अफेक्टेड एरियाज'* (उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास की चुनौतियाँ) शीर्षक से अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट के आखिर में ये टिप्पणियाँ की गई हैं:

*''आजादी के बाद विकास के जिस प्रतिमान (या पैराडाइम) को अपनाया गया, उसने समाज में हाशिए पर पड़े तबकों में पहले से मौजूद असंतोष को और भी ज्यादा बढ़ाया...।* ***नीति-निर्माताओं द्वारा तय किए गए विकास के प्रतिमान को इन समुदायों पर थोप दिया गया....इससे इन लोगों को अपूरणीय क्षति हुई। इस विकास प्रतिमान की लागत गरीबों के हिस्से में आई है।***

---

[1] अजय के. मेहरा, 'माओइज्म इन ग्लोबलाइजिंग इंडिया', संकलित, द *डार्क साइड ऑफ ग्लोबलाइजेशन*, संपादक, जॉर्ज हेनी (George Heine) और रमेश ठाकुर (यूनाइटेड नेशन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011).

***लेकिन इसके फायदों के बड़े हिस्से पर समाज के प्रभुत्वशाली तबके का कब्जा होता रहा है और गरीबों को बहुत ही कम फायदा मिला है।*** *दरअसल, विकास इन समुदायों की जरूरतों के प्रति असंवेदनशील ही रहा है।* ***इस कारण इन्हें अनिवार्य रूप से विस्थापन का सामना करना पड़ा है और ये एक तरह से उप-मानवीय (sub human) (या सामान्य मनुष्यों से बदतर) जिंदगी जीने को मजबूर हो गए हैं।*** *खासतौर पर आदिवासियों के मामले इसका प्रभाव बहुत ज्यादा नकारात्मक रहा है। इसने उनके सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक पहचान और संसाधनों को नष्ट किया है। इन सबके कारण धीरे-धीरे इनका शोषण करना और भी आसान हो गया है...* ***विकास के पैटर्न और इसके क्रियान्वयन ने नौकरशाही के भ्रष्ट व्यवहार और ठेकेदारों, बिचौलियों, व्यापारियों और व्यापक समाज के लोभी तबकों द्वारा किए जाने वाले खूँखार (rapacious) शोषण को और भी ज्यादा बढाया है। ये सभी इस विकास में अपना हिस्सा चाहते हैं। इन सबका मकसद इनके संसाधनों पर कब्जा करना और वंचित लोगों की गरिमा का हनन करना है।*** *''* (पैरा 1.18.1 और 1.18.2, वाक्यों पर जोर जोड़ा गया है)

**7.** लोग इस तथ्य को भी भली-भाँति जानते हैं कि सरकारी रिपोर्टों में संतुलित भाषा के सहारे वास्तविक हालात को कम करके बताया जाता है। इसके बावजूद भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा गठित एक समिति ने अपनी रिपोर्ट में 'खूँखार' शब्द का प्रयोग किया है। इसके द्वारा यह बताया गया है कि असीमित लालच को पूरा करने के लिए किस तरह लूटमार की जा रही है और लोगों की जीविका छीनी जा रही है। यह हमारे अपने सह-नागरिकों के एक बड़े हिस्से की पीड़ा और दुख को सामने लाता है। विशेषज्ञ समिति ने भारत के बड़े हिस्से में रहने वाले हमारे सह-नागरिकों के जीवन-स्तर का वर्णन करते हुए इसे उप-मानवीय (या सामान्य मनुष्यों से बदतर) संज्ञा दी है। इससे इस बात का साफ संकेत मिलता है कि सिर्फ पहले से कायम आर्थिक वंचना के कारण ही इनकी यह स्थिति नहीं है। दरअसल, राज्य द्वारा अपनाए गए विकास के प्रतिमान (या पैराडाइम) की ताकतों और इसके साधनों ने धीरे-धीरे इनसे मानवीय गरिमा के लिए जरूरी सभी बुनियादी कारकों को छीन लिया है। यह बात भी बहुत महत्वपूर्ण है कि भारतीय राज्य ने इस संदर्भ में मिले सुझावों की हमेशा ही अनदेखी की है। योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों के समूह ने भी इस संदर्भ में कुछ सुझाव देते हुए लिखा है कि:

*''इस तरह वर्तमान भारत के बड़े हिस्से में मौजूद सामाजिक-आर्थिक संदर्भ के विविध पहलूओं का हमारा संक्षिप्त पुनरावलोकन खत्म होता है। ये विविध पहलू बहुत ही बेचैनी पैदा करते हैं।*

*दरअसल, यह सामाजिक-आर्थिक संदर्भ नक्सलवादी आंदोलन जैसी राजनीति में योगदान दे सकता है या हिंसा के किसी दूसरे रूप में सामने आ सकता है। इस बात को स्वीकार किया जाना चाहिए कि विभिन्न तरह के आंदोलन मौजूद है।* ***सामान्य तौर पर, इन सबको 'अशांति' (unrest) या कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में देखना ठीक नहीं है। दरअसल, यह इन्हें ताकत की जोर से दबाने का बहाना ढूंढने से थोड़ा ही बेहतर है।*** *यह जरूरी है कि इस तरह के असंतोष को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में देखा जाए; जरूरत इस बात की है कि जीविका के अधिकर, जीवन तथा एक गरिमायुक्त और सम्मानजनक अस्तित्व के अधिकार जैसे लोगों के मुद्दों को ऐजेंडे पर वापस लाया जाए।* ***राज्य को खुद यह महसूस करना चाहिए कि वह संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों में दिए गए लोकतांत्रिक और मानव अधिकारों तथा मानवीय उद्देश्यों के प्रति वचनबद्ध है। राज्य को कानून के शासन का कड़ाई से पालन करना है। सच्चाई यह है कि राज्य के पास शासन करने के लिए इनके अलावा कोई प्राधिकार या अथॉरिटी भी नहीं है...।*** *सरकार को यह स्वीकार करना चाहिए कि विरोध या असहमति या अंसतोष की अभिव्यक्ति लोकतंत्र की एक सकारात्मक विशेषता है। इसे यह भी मानना चाहिए कि अमूमन 'अशांति' ही एकमात्र ऐसी चीज होती है जो सरकार पर अपना काम करने और अपने वायदों को पूरा करने के लिए दबाव डालती है। बहराहल, प्राधिकारियों द्वारा अमूमन विरोध करने के अधिकार, यहाँ तक कि शांतिपूर्ण तरीके से विरोध करने के अधिकार को भी मान्यता नहीं दी जाती है। इसलिए अहिंसक आंदोलनों का भी बहुत ही सख्ती से दमन किया जाता है...।* ***इस तथ्य से हैरत नहीं होती है कि इतनी अशांति है, लेकिन इस बात से जरूर हैरत होती है कि राज्य इससे सही नतीजा नहीं निकाल पा रहा है।*** *आधिकारिक नीतिगत दस्तावेजों में इस बात को स्वीकार किया जाता है कि उग्रवाद और गरीबी में सीधा संबंध है....या इस बात को भी माना जाता है कि आदिवासियों और जंगलों के बीच में भी गहरा जुड़ाव है। लेकिन व्यवहार में सरकार ने 'अशांति' को सिर्फ कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में ही देखा है। इस सोच में बदलाव करना और नीति और उसके क्रियान्वयन में सामंजस्य लाना बहुत ही जरूरी है।* ***समाज में हर किसी के लिए समानता, न्याय और गरिमा होने पर ही शांति, समरसता और सामाजिक विकास हो सकता है।''*** (पैरा 1.18.3 और 1.18.4, वाक्यों पर जोर जोड़ा गया है)

**8.** राज्य हमारे संविधान के विवेक को दर्शाने वाले इस तरह के सुझावों पर ध्यान नहीं दे रहा है। इसकी बजाय, इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि शासन के लिए मजबूत और हिंसक होना अनिवार्य है। वर्तमान केस की सुनवाई में भी बार-बार यही बात सामने आती

रही है। छत्तीसगढ सरकार इसी नजरिए से दाँतेवाड़ा और उसके पड़ोसी जिलों के हालात के बारे में फैसले ले रही है। यह माओवादी/नक्सलवादी विद्रोह को दबाने के लिए कानून की उपेक्षा करके सिर्फ हिंसा का सहारा ले रही है। उसने इस तथ्य से भी आँखें बंद कर ली हैं कि इस तरह की नीति से न तो समस्याएँ सुलझी हैं और न ही सुलझेंगी। इससे सिर्फ हिंसक विद्रोह और विद्रोह के दमन का चक्र ज्यादा गहरा और ज्यादा व्यापक होता जाएगा। खुद छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा दिए गए मौत के आँकड़े भी इसी तथ्य को बयान करते हैं। हिंसा और प्रतिहिंसा का यह चक्र तकरीबन पिछले एक दशक से चल रहा है। इससे कोई भी विवेकशील इंसान यह नतीजा निकाल सकता है कि योजना आयोग की विशेषज्ञ समिति द्वारा कही गई बातें सही हैं।

**9.** दरअसल, समस्या की बुनियादी कारण कहीं और है। इस कारण पर विचार करके ही इस समस्या को हल किया जा सकता है। आधुनिक नव-उदाररवादी आर्थिक विचारधारा ने असीमित स्वार्थ और लालच की संस्कृति को बढ़ावा दिया है। इसमें यह झूठा वायदा भी किया जाता है कि उपभोग में लगातार बढ़ोतरी होने से आर्थिक संवृद्धि होती है जिससे हर किसी की स्थिति बेहतर बनती है। इसके आधार पर सामान्य तौर पर भारत में और विशेष रूप से छत्तीसगढ़ के अधिकांश इलाके में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से अनसस्टेनेबल (असतत) परिस्थितियाँ बना दी गई हैं। यह बताया गया है कि:

*''कॉरपोरेट दुनिया को इस बात की हड़बड़ी है कि वह तेजी से विकसित होते शहरी मध्य वर्ग के बीच अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करे। इसका मतलब है उत्पान और व्यापार के लिए ज्यादा-से-ज्यादा जमीन की जरूरत। किसान और आदिवासी भूमि-अधिग्रहण और विस्थापन के स्वाभाविक शिकार रहे हैं। खनन गतिविधियों के विस्तार ने जंगल के इलाके का अतिक्रमण किया है...। आधारभूत संरचना के विकास के लिए ज्यादा इस्पात, सीमेंट और ऊर्जा की जरूरत होती है। पूर्वी भारत के कम आय वाले राज्यों के सार्वजनिक क्षेत्र में इसे बनाने की क्षमता नहीं है। लेकिन इन राज्यों में बहुत ज्यादा प्राकृतिक संसाधन हैं। इस कारण इन राज्यों ने भारतीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खनन और भूमि अधिकार दिए हैं...। अधिकांश प्राकृतिक संसाधन उन इलाकों में है जहाँ गरीब आदिवासी रहते हैं और इन्हीं इलाकों में नक्सली भी सक्रिय हैं। छत्तीसगढ़ पूर्वी भारत में स्थित एक राज्य है। भारत के कुल लौह अयस्क का 23 प्रतिशत हिस्सा यहीं है। इसके अलावा, यहाँ बहुत ज्यादा मात्रा में कोयला भी है। इसने टाटा स्टील, अर्सेलर-मित्तल, डी बीयर्स कांसोलिडेटेड माइंस, बीएचपी मिलियन और रियो टिन्टो से अरबों रूप के सहमति-पत्रों (MoUs)*

*और अन्य समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं...। इन इलाकों में अनंत काल से रहने वाले आदिवासी खनन करने वाले लोगों, निर्माण मजदूरों और ट्रकों आदि को देखकर बहुत ज्यादा डर गए हैं।''*

10. भारत में नव-उदारवादी विकास प्रतिमान के पुराने और नए समर्थकों द्वारा अमूमन बहुत ही खतरनाक अंदाज में एक खास तरह का तर्क दिया जाता है। इस तर्क के अनुसार, जब तक प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से दोहन करके विकास नहीं किया जाएगा, तब तक भारत वैश्विक स्तर पर होड़ नहीं कर पाएगा; और इस तरह के विकास के बगैर यह गरीबी, अशिक्षा, भूख और गंदगी जैसी अंतहीन और भयावह लगने वाली समस्याओं का सामना भी नहीं कर पाएगा। इस बात पर कई मरतबा वाद-विवाद होता है कि इस तरह से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उस क्षेत्र के पर्यावरण या सामाजिक संरचना के सस्टेनेबल (या सतत) है या नहीं। लेकिन यह भी सच्चाई है कि इस तरह का वाद-विवाद बहुत आगे नहीं जाता है और इसे जल्दी से दफना दिया जाता है। इस संबंध भारत के नीति-निर्माता या अभिजन कोई विश्वसनीय जवाब नहीं देते हैं। दरअसल, इन्होंने खुद को उन लोगों की पीड़ा से पूरी तरह काट लिया है जो विस्थापन और सबकुछ छीन लिए जाने का दर्द सह रहे हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि ये इस ऐतिहासिक प्रमाण की उपेक्षा कर रहे हैं कि प्राकृतिक संसाधनों की लूट-खसोट पर निर्भर विकास के प्रतिमान (या पैराडाइम) ने अधिकांश मामलों में राज्यों को नाकाम ही बनाया है। इसके कारण लाखों की संख्या में लोग दुख और उपेक्षा की जिंदगी जीने के लिए मजबूर हैं।
11. बहुत से विवेकशील चिंतकों ने 'संसाधन अभिशाप' के बारे में लिखा है। यह एक ऐसी परिघटना है जो उन देशों या क्षेत्रों में होती है जिनके पास बहुत ज्यादा संसाधन होते हैं, लेकिन मानव विकास के विभिन्न संकेतकों के संदर्भ में इनका प्रदर्शन बहुत ही खराब रहता है। बहुत सारे देश खेतीहर निर्यात पर निर्भर होते हैं या उनका विकास प्रतिमान जनसंख्या के सभी हिस्सों के व्यापक विकास पर आधारित होता है। इन देशों की तुलना में बहुत ज्यादा प्राकृतिक संसाधन रखने वाले देशों में 'बहुत गरीबी है, स्वास्थ्य सेवा खराब है, व्यापक कुपोषण है, शिशु मृत्युदर बहुत ज्यादा है, औसत आयु कम है और शिक्षा की व्यवस्था बहुत ही खराब है।'[2]

---

[1] अजय के. मेहरा, सुपरा नोट 1.

[2] जोसेफ ई. स्टिलिट्च, 'मेकिंग नेचुरल रिसोर्सेज इन टू अ ब्लेशिंग रैदर दैन अ कर्स', संकलित, *कवरिंग ऑयल*, संपादक, स्वेतलाना तसालिक और अर्या शिफरिन, ओपने सोसायटी इंस्टीट्युट (2005).

12.राज्य ने सीधे तौर पर संवैधानिक मानकों और मूल्यों का उल्लंघन करके पूँजीवाद के लूटेरे रूपों को समर्थन और बढ़ावा दिया है। अमूमन इस तरह के पूँजीवाद ने खनन पर आधारित कारखानों के आस-पास अपनी गहरी जड़ें जमा ली हैं। हम यह पाते हैं कि भारत के संसाधन-संपन्न क्षेत्रों में अतीत और वर्तमान- दोनों में ही सामाजिक अशांति उत्पन्न करने वाली बहुत सारी घटनाएँ होती रही हैं। दरअसल, ये वही इलाके हैं जहाँ मानव विकास का स्तर बहुत नीचे है। इससे यह पता चलता है कि यह तर्क बहुत ही खोखला है कि इस तरह का विकास प्रतिमान आवश्यक है और इसके नतीजे अनिवार्य रूप से सामने आते हैं। संविधान में बिल्कुल ही साफ शब्दों में यह माँग की गई है कि राज्य को निरन्तर इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि उसके नागरिकों के बीच बंधुत्व को बढ़ावा मिले। इस पूरी प्रक्रिया में हर नागरिक की गरिमा की हिफाजत होनी चाहिए और उसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। संविधान के निदेशक सिद्धांतों को आधार बनाकर न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया जा सकता। इसके बावजूद 'देश के गवर्नेंस (या अभिशासन) में इनका बुनियादी महत्व है।' ये राज्य को यह निर्देश देते हैं कि वह समुदाय के भौतिक संसाधनों का उपयोग सभी की सामान्य भलाई के लिए करे। राज्य को इन संसाधनों का उपयोग सिर्फ अमीर और ताकतवर लोगों की भलाई के लिए नहीं करना चाहिए। उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इन संसाधनों को निकालने के लिए किन लोगों को बेदखल किया जा रहा है और शक्तिहीन बनाया जा रहा है। हमारा संविधान सभी नागरिकों के लिए पूर्ण न्याय- यानी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का वायदा करता है। इस तरह का वायदा, अपने सबसे कमजोर रूप में भी उन नीतियों की अनदेखी नहीं कर सकता है, जो साफ तौर पर जनसंख्या के एक पड़े हिस्से को बहुत ज्यादा कष्ट पहुँचाते हैं।

13.निजी क्षेत्र द्वारा संसाधनों का तेजी से दोहन किया जा रहा है। इस तरह के दोहन में लागतों और फायदों के समान वितरण की कोई विश्वसनीय वचनबद्धता नहीं होती है। इसके अलावा, इसमें पर्यावरणीय सस्टेनेबिलिटी (या सततता) पर भी ध्यान नहीं दिया जाता है। निश्चित तौर पर, ये नीतियाँ उन सिद्धांतों का उल्लंघन करती हैं जिन्हें 'गवर्नेंस की बुनियाद' माना जाता है। जब बहुत बड़े पैमाने पर इस तरह का उल्लंघन होता है, तो यह अनुच्छेद 14 तथा अनुच्छेद 21 में दिए गए प्रावधानों का उल्लंघन करता है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 14 में कानून के समक्ष समानता और कानून की समान सुरक्षा और अनुच्छेद 21 में जीवन की गरिमा का प्रावधान किया गया है। यह एक तथ्य है कि संसाधनों का दोहन करने वाले कारखानों - जिन्हें कुछ स्थानों पर खनन माफिया भी कहा जाता है- और राज्य के कुछ ऐजेंटों का घिनौना गठजोड़ राज्य के नैतिक प्राधिकार को प्रभावहीन बना देता है।

इससे अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 की और ज्यादा उपेक्षा होती है। योजना आयोग की विशेषज्ञ समिति ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि यदि राज्य इसके विरोध को सिर्फ कानून और व्यवस्था की समस्या मानकर कदम उठाता है और स्थानीय लोगों के खिलाफ बड़े पैमाने पर हिंसा को बढ़ावा देता है, तो इससे सिर्फ ज्यादा विद्रोह ही सामने आएगा। कुछ विद्वानों ने भारत में राजनीतिक हिंसा के विविध रूपों की पेचीदगियों के बारे में लिखा है कि:

*''देश के आर्थिक संबंध और स्तरीकृत सामाजिक संरचना- दोनों ही राजनीतिक हिंसा की बुनियाद हैं...। स्थापित सामन्ती संरचनाएँ, उभरते वाणिज्यिक हित, तथा स्थापित व्यवस्था, नए हितों, राजनीतिक अभिजनों और नौकरशाही के बीच का घिनौना गठजोड़ और सार्वजनिक आधारभूत संरचना और सुविधाओं का अभाव शोषण को स्थायी बना देती हैं। इसके कारण जनसंख्या के इन हिस्सों की तकलीफ इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि क्राँतिकारी राजनीति का आह्वान इन्हें आकर्षित करने लगता है...। भारत के विकास संबंधी विरोधाभासों ने लोगों की व्यवस्थित जिंदगी को हिलाकर रख दिया है। भारत में पिछले कई दशकों में विकास परियोजनाओं के कारण लाखों लोग विस्थापित हुए हैं। भारतीय राज्य इन लोगों को जीविका के वैकल्पिक साधन उपलब्ध कराने में नाकाम रहा है। एक अनुमान के मुताबिक 1950 से 1990 के बीच विकास परियोजनओं के कारण अनुसूचित जनजातियों के 85 लाख लोग विस्थापित हुए। यह कुल विस्थापित हुए लोगों का 40 प्रतिशत हिस्सा हैं। इनमें से केवल 25 प्रतिशत लोगों का ही पुनर्वास किया गया...। इस बारे में कोई सुनिश्चित आँकड़ा नहीं है लेकिन यह माना जाता है कि माओवादियों के पैदल सैनिकों में दलितों और आदिवासियों का अनुपात बहुत ज्यादा है...। समाज के इन दो तबकों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों के एक अध्ययन से यह बात उजागर होती है कि जिन क्षेत्रों में ज्यादा अत्याचार हुए हैं, वहीं नक्सलवाद का ज्यादा प्रसार हुआ है...। ये कमजोर तबके अभी भी नक्सलवाद के विस्तार के सबसे संवेदनशील क्षेत्र हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, बाजारीकरण और वैश्वीकरण के उभरते संदर्भ ने पहले से कायम प्रभुत्वशाली संरचनाओं में नए आयाम जोड़ दिए हैं।''*

**14.**हमारी राष्ट्र की सुरक्षा और एकता, हमारे सभी लोगों के कल्याण और संविधान के पवित्र दर्शन और लक्ष्यों को इस बात से बहुती गहरा खतरा है कि राज्य हर बात से गलत नतीजे

[1] अजय के. मेहरा, सुपरा नोट 1

निकाल रहा है। दरसअल, यह एक बहुत ही अशुभ संकेत हैं। पीछे हमने योजना आयोग की जिस विशेषज्ञ समिति का उल्लेख किया है, उसका भी यही मानना है। भारतीय राज्य समस्या को वास्तविक सामाजिक–आर्थिक हालात के संदर्भ में नहीं देख रहा है। वह यह भी महसूस नहीं कर रहा है कि उसने जिस झूठे विकास प्रतिमान को बढ़ावा दिया है, उसका कोई मानवीय चेहरा नहीं है। इसने लोगों के मन में गहरे तक यह भावना बिठा दी है कि वे असहाय हैं। दूसरी ओर, सत्ता में बैठे लोगों द्वारा लगातार इस बात का प्रचार किया जा रहा है कि किसी तरह ज्यादा–से–ज्यादा आर्थिक संवृद्धि करना ही एकमात्र रास्ता है। इस मॉडल के कारण गरीब और वंचित लोगों को बहुत ज्यादा बोझ और दुख का सामना करना पड़ रहा हैं। लेकिन सत्ता में बैठे लोग यह दलील दे रहे हैं कि विकास के इस प्रतिमान में इस स्थिति से बचा नहीं जा सकता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमित भादुड़ी ने इस बारे में लिखा है कि:

*''यदि हम अपने मध्य वर्ग के दायरे और मुख्यधारा की मीडीया द्वारा दिखाई जा रही दुनिया से थोड़ा आगे जाकर देखें, तो हम यह पाएँगे कि हमारे देश की तस्वीर बहुत अच्छी नहीं है...। यदि आप वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाजारीकरण के सद्‌गुणों का फायदा उठाने वाले विशेषाधिकार प्राप्त छोटे से तबके के दायरे से बाहर निकलते हैं, तो आप महसूस करेंगे कि सारी चीजें बहुत ज्यादा अनिश्चित हैं।* ***गृह मंत्रालय के एक अनुमान के मुताबिक देश के कुल 607 जिलों में से 120 से 160 जिले 'नक्सल प्रभावित' हैं। यह आंदोलन साधनहीन और असहाय किसानों के समर्थन से भारत के तकरीबन एक–चौथाई इलाके में फैल गया है। इसके बावजूद यह सरकार लोगों के आक्रोश और निराशा के उन कारणों पर ध्यान नहीं दे रही है जिसके कारण इस तरह के आंदोलन को बढ़ावा मिलता है; इसकी बजाय, यह इसे एक खतरा, यानी कानून व्यवस्था की समस्या के रूप में देख रही है...। इसके लिए यह एक ऐसा खतरा है जिसे राज्य की हिंसा के द्वारा जड़ से उखाड़ फेंकना है। यह आक्रोशित गरीबों के प्रतिरोध का अपनी हिंसा से दमन करती है; और फिर इस काम के लिए अपना पीठ थपथपाती है...।*** *ऊँची संवृद्धि के लिए गरीबों को बेहरहम वैश्विक बाजार के सामने कुपोषित, अप्रशिक्षित, अशिक्षित और असहाय छोड़ दिया गया है। और इन गरीबों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है...।* ***यह सिर्फ एक अन्यायी प्रक्रिया नहीं है। इस तरह से हासिल की जाने वाली ऊँची संवृद्धि सिर्फ आय के वितरण के सवाल की ही उपेक्षा नहीं करती है, इसकी हकीकत और भी ज्यादा बुरी है। यह विकास के नाम पर गरीबों को क्रूर हिंसा की धमकी देती है। यह एक तरह का 'विकास आतंकवाद' है। इसमें राज्य द्वारा विकास के नाम पर***

***गरीबों के खिलाफ लगातार हिंसा की जा रही है। राज्य मुख्य रूप से कॉरपोरेट अभिजाततंत्र (corporate aristocracy) के हित में काम कर रहा है। इस काम में इसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ) और विश्व बैंक के साथ-ही-साथ स्वार्थी राजनीतिक वर्ग का समर्थन भी मिला हुआ है।*** *राजनीतिक समूहों के द्वारा इस वैकासिक आतंकवाद को ही प्रगति बताया जा रहा है। अकादमिक और मीडीया से जुड़े लोग भी राजनीतिक समूहों का अनुसरण कर रहे हैं। वे भी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि गरीब और वंचित लोगों की पीड़ा विकास की अनिवार्य कीमत हैं। ऐसा लगता है कि इस दौर में इस बात को पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया है कि कोई अन्य विकल्प नहीं है...। फिर भी सच्चाई यह है कि विकास के जिस मॉडल पर इतनी व्यापक सहमति बन चुकी है, वह पूरी तरह से गलत है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था ने इसे पहले ही नकार दिया है। आगे यह इसे और ज्यादा ताकत से खारिज करेगी। 'वैकासिक आतंकवाद' का सामना करने वाले गरीब भी अपने सीधे प्रतिरोध से इसे नकार देंगे।''*

15. मानो इतना ही काफी नहीं था, अब हमारे नीति-निर्माता संवैधानिक विवेक और मूल्यों से भी तेजी से मुँह फेरने लगे हैं। सरकारी कार्रवाईयों से इसी तरह के खतरनाक संकेत मिलते हैं। एक ओर सरकार निजी क्षेत्र को टैक्स छूट के रूप में लगातार सब्सिडी दे रहा है, वहीं वह यह भी कह रही है कि उसके पास इतना राजस्व नहीं है कि वह सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों द्वारा गरीबों की मदद करने के अपने दायित्वों को पूरा कर सके। दूसरी ओर, सरकार गरीबों के असंतोष और गुस्से का दमन करने के लिए गरीब युवकों का ही सहारा ले रही है और उन्हें बंदूक थमा रही है।

16. ऐसा लगता है कि राज्य की सुरक्षा और आर्थिक नीति के बारे में फैसला करने वाले लोगों का नया मंत्र यही है कि अमीरों को टैक्स में छूट दो और गरीब युवकों के एक हिस्से को बंदूक, ताकि गरीब आपस में ही लड़ते रहें। यह एक ऐसे राष्ट्र के विकास का बड़ा 'विजन' (या दर्शन) है जिसने खुद को प्रभुसत्तासम्पन्न, सेकुलर, समाजवादी और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में संगठित किया है। संविधान का दर्शन और मूल्य राज्य को यह सकारात्मक दायित्व देता है कि वह हर नागरिक की गरिमासुनिश्चित करे। इसलिए स्वाभाविक रूप से यह सवाल सामने आता है कि क्या सत्ताधारी नीति-निर्माता संविधान के दर्शन, मूल्यों और सीमाओं से निर्देशित हो रहे हैं?

17.ऊँचे स्तर की नीतियाँ तय करने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि समाज एक जंगल नहीं है कि जंगल में एक ओर लगी आग को दूसरी ओर आग लगाकर बुझाया जा सकता है। मनुष्य सूखे घास की अलग-अलग पत्तियों की तरह नहीं होते हैं। वे एक चेतनायुक्त प्राणी के रूप में अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग करते हैं। यदि लोगों के एक समूह को हथियार दे दिया जाए तो वह दूसरे नागरिकों और खुद राज्य के खिलाफ हो सकता है और अमूमन ऐसा हुआ भी है। हालिया इतिहास में राज्य के संरक्षण और समर्थन की आड़ में काम करने वाले सशस्त्र निगरानी समूहों (armed vigilante groups) के खतरों के बारे में बताने वाले बहुत सारे उदारहण मिल जाएँगे।

18.नीति-निर्माताओं में से कुछ लोग बहुत ही जोर-शोर से और दंभ के साथ इस तरह की भ्रमित नीतियों की तरफदारी करते हैं। लेकिन ये नीतियाँ हमारे संविधान के दर्शन और आदेशों के बिल्कुल विपरीत हैं। हमारा संविधान यह माँग करता है कि लोगों द्वारा राज्य को सौंपी गई सत्ता का उपयोग सिर्फ लोगों के कल्याण के लिए ही होना चाहिए- यानी इसका उपयोग अमीर और गरीब- हर किसी के कल्याण के लिए होना चाहिए। इस तरह यह समूहों के बीच बंधुत्व के दायरे के भीतर सबके लिए मानवीय गरिमा की स्थिति सुनिश्चित करने का आश्वासना देता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा अपनाई गई नीतियों का अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह बात बिल्कुल ही साफ है कि इस तरह की नीतियों से इनका पूरी तरह से उल्लंघन होता है। इन नीतियों के कारण ही एक ऐसा जहरीला वातावरण तैयार हो जाता है जिसमें समाज के वंचित तबकों के युवकों का पूरी तरह से अमानवीयकरण हो जाता है। राज्य द्वारा इन युवकों को किताबें देने की बजाय इन्हें बंदूकें थमा दी गई हैं और इन्हें जंगलों की लूट-खसोट में पहरेदार के रूप में खड़े रहने का काम दे दिया गया है। दरअसल, ये चीजें राष्ट्र को बर्बाद कर देंगी। यहाँ यह बात नोट करने की जरूरत है कि इस अदालत ने हस्तक्षेप करते हुए छत्तीसगढ़ सरकार को यह आदेश दिया था कि जिन स्कूलों और हॉस्टलों में सुरक्षा बल रह रहे हैं, उन्हें वहाँ से हटा दिया जाए। लेकिन इस तरह के आदेश के बावजूद बहुत से स्कूल और हॉस्टल अभी भी सुरक्षा बलों के कब्जे में ही हैं। छत्तीसगढ़ में समाज और जिंदगी की गिरावट का यह आलम है। खुद तथ्य हालात बयान कर रहे हैं।

19.हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के केनेडी स्कूल के एक प्रोफेसर रॉबर्ट आई. रॉटबर्ग ने हाल के दशकों में बहुत से राष्ट्र-राज्यों की नाकामी के कारणों का विश्लेषण किया है। इन्होंने यह विचार

व्यक्त किया है कि 'राष्ट्र-राज्यों का अस्तित्व इसलिए होता है कि वे एक सुनिश्चित सीमा के भीतर रहने वाले लोगों को विकेन्द्रीकृत तरीके से राजनीतिक (सार्वजनिक) वस्तुएँ उपलब्ध कराएँ...। अमूमन वे राष्ट्रीय लक्ष्यों और मूल्यों को बढ़ावा देने के दौरान अपने लोगों के हितों को संगठित करते हैं और उन्हें सामने लाते है। लेकिन वे विशिष्ट रूप से सिर्फ यही काम नहीं करते हैं।' राष्ट्र-राज्य के नागरिकों द्वारा इनसे मानकीय रूप से कुछ खास उद्देश्यों को पूरा करने की उम्मीद की जाती है। इसमें 'बाहरी ताकतों और प्रभावों' का प्रतिरोध या अपने हित के लिए इनका उपयोग शामिल है। इनसे यह भी उम्मीद की जाती है कि ये बाहरी और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों के 'प्रतिबंधों और चुनौतियों' और 'आंतरिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वास्तविकताओं' की गतिशीलता के बीच सामंजस्य बनाए। वे यह लिखते हैं कि:

*''राज्य इन सभी आयामों या इनमें से कुछ आयामों में सफल या नाकाम हुए हैं। इन आयामों के संदर्भ में राज्यों के प्रदर्शन अर्थात् सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक वस्तुओं को उपलब्ध करने की उनकी क्षमता के आधार पर ही मजबूत राज्यों को कमजोर राज्यों से और कमजोर राज्यों को नाकाम या विघटित राज्यों से अलग किया जाता है...। राजनीतिक वस्तुओं का भी एक तरह पदसोपान (hierarchy) होता है। कोई राजनीतिक वस्तु सुरक्षा खासतौर पर मानवीय सुरक्षा उपलब्ध कराने से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। व्यक्ति कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अकेले अपनी हिफाजत करने की कोशिश कर सकते हैं। या व्यक्तियों के समूह एक दूसरे के साथ जुड़कर संगठित हो सकते हैं और ऐसी वस्तुएँ या सेवाएँ खरीद सकते हैं जो उनकी सुरक्षा की भावना को बढ़ाए। बहरहाल, पारंपरिक रूप से और आम तौर पर व्यक्तियों या समूहों द्वारा निजी सुरक्षा के लिए कई कदम उठाए जाते रहे हैं। लेकिन ये कदम सार्वजनिक सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था की जगह नहीं ले सकते हैं। राज्य का सबसे प्रमुख काम यह है कि वह हर किसी को सुरक्षा रूपी राजनीतिक वस्तु उपलब्ध कराए- सीमा-पार के हमलों और घुसपैठ को रोके, घरेलू खतरों और राष्ट्रीय एकता और सामाजिक संरचना पर हमलों को खत्म करे...।* ***नागरिकों के अंदर भरोसा कायम करना भी राज्य का काम है। राज्य को लोगों के भीतर यह भावना भरनी चाहिए कि वे हथियारों या शारीरिक बल-प्रयोग का सहारा लिए बिना ही राज्य और अन्य लोगों के साथ अपने विवाद सुलझाएँ।''*** [1]

[1] 'द फैल्योर एंड कोलैप्स ऑफ नेशन-स्टेट- ब्रेकडाउन, प्रिवेंशन एंड फेल्योर', संकलित, *व्हेन स्टेट फॉल: कॉजेज एंड कंसीक्वेंशेज*, संपादक, रॉबर्ट आई. रॉटबर्ग, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004.

20. राज्य का प्राथमिक काम यह है कि वह मानवीय गरिमा का उल्लंघन किए बिना सभी नागरिकों को सुरक्षा मुहैया कराए। निश्चित रूप से इसका मतलब है कि राज्य को इस तरह काम करने चाहिए जिससे लोगों में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और वितरण के कारण असंतोष उत्पन्न न हो। उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक कार्य (social action) का सही तरीके से समायोजन हो और इसके फायदों तथा लागतों का सही तरीके से वितरण हो ताकि लोग यह न महसूस करें कि उनके साथ अन्याय हुआ है। हमारे संविधान में दिए गए राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में स्पष्ट रूप से इस बात को मान्यता दी गई है। हमारा संविधान यह मानता है कि जब तक हम अपने नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय हासिल नहीं कर लेते हैं, तब तक हम अपने नागरिकों के लिए मानव गरिमा को सुनिश्चित नहीं कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में हम समूहों के बीच बंधुत्व की भावना को भी बढ़ावा नहीं दे सकते हैं। जो नीतियाँ इस बुनियादी सच्चाई से मेल नहीं खाती हैं वे निश्चय ही राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए विनाशकारी हैं। हमारा संविधान गरीबों में असंतोष उत्पन्न करने वाली और हिंसक राजनीति की स्थितियाँ तैयार करने वाली सामाजिक-आर्थिक नीतियों को अपनाने के विचार को पूरी तरह नकार देता है। दरअसल, राज्य द्वारा इस तरह की नीतियों को अपनाने के कारण ही यह स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके बाद, अगर राज्य यह दावा करता है कि उसके पास संवैधानिक मूल्यों की रूपरेखा के भीतर अशांति और हिंसा का सामना करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, तो इसका मतलब है कि वह अपने संवैधानिक दायित्वों से मुँह मोड़ रहा है। यह दावा किया जाता है कि संसाधनों को दबा कर रखने से राज्य नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की पर्याप्त क्षमता का विकास नहीं कर पाता है। यानी राज्य के पास इतनी क्षमता नहीं रहती है कि वह संवैधानिक रूपरेखा के भीतर काम करने वाले और अच्छी तरह से प्रशिक्षित पुलिस और सुरक्षा बलों को संगठित करे। दरअसल, इस तरह का तर्क राज्य के मूल काम को त्यागने की तरह है। राज्य द्वारा गरीबों के अंसतोष को दबाने के लिए गरीबों के ही एक हिस्से के बहुत कम पढ़े लिखे युवकों को बंदूक देने की नीति अपनाई जाती है। यह खुदकुशी की गोलियाँ रोपने की तरह है। इससे हमारा समाज विभाजित और नष्ट हो सकता है। हमारे युवा हमारे सबसे बहुमूल्य संसाधन हैं। एक बेहतर कल के लिए हमें इन्हें सही तरीके से पढ़ाने-लिखाने की जरूरत है। यह एक तथ्य है कि हमारे देश में हद से ज्यादा असमानता है; इसके अलावा, जनसंख्या के लिहाज से हमारी

जनसंख्या में युवकों का अनुपात तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में, इस तरह की नीति एक राष्ट्रीय आपदा का शक्ल ले सकती है।

**21.**यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि हमारा संविधान 'राष्ट्रीय खुदकुशी का समझौता'[1] नहीं है। कम-से-कम इसका दर्शन हमें इतना समर्थ बनाता है कि हम संवैधानिक निर्णायक (adjudicator) के रूप में पुलिस प्रतिमान (policing paradigm) के उभार और संस्थानीकरण को समझें और इसे रोकें। अगर इसे न रोका गया तो यह पूरे राष्ट्र को अपनी चपेट में ले सकता है, जिससे पूरे राष्ट्र को यह कहना पड़ सकता है- 'हॉरर! हॉरर!' (बीभत्स! बीभत्स!)

**22.**ऊपर वर्णित इन बातों के संदर्भ में ही हमें आगे दिए गए मुद्दों पर विचार करना है और उचित आदेश देना है। हमने याचिकाकर्त्ताओं की तरफ से पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता अशोक एच. देसाई तथा छत्तीसगढ़ सरकार की तरफ से पेश हुए वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरीश साल्वे और एम. एन. कृष्णास्वामी के तर्कों को विस्तार से सुना है। हमने भारत सरकार की तरफ से पेश हुए भारत के विद्वान सॉलीसीटर जनरल श्री गोपाल सुब्रमण्यम के विचारों को भी सुना है।

II

## वर्तमान मामले से जुड़े संक्षिप्त तथ्य और इतिहास

**23.**2007 में यह याचिका इन लोगों के द्वारा दायर की गई: (i) डॉ. नंदिनी सुंदर, दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स की प्रोफेसर और *सबल्टर्नस एंड सोवरेन्स: एन एंथ्रोपोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ बस्तर* (दूसारा संस्करण 2007) की लेखिका; (ii) डॉ. रामचंद्र गुहा, एक प्रसिद्ध इतिहासकार, पर्यावरणवादी और स्तंभकार, तथा *सैवेजिंग द सिविलाइज्ड: वेरियर एलविन, हिज ट्राइबल्स एंड इंडिया* (1999) और *इंडिया आफ्टर गाँधी* जैसी बहुत सी किताबों के लेखक; और (iii) श्री ई. ए. एस. शर्मा, भारत सरकार के पूर्व सचिव और आंध्र प्रदेश सरकार के पूर्व जनजातीय कल्याण कमीश्नर। याचिकाकर्त्ताओं ने अन्य बातों के अलावा यह

---

[1] अहरॉन बैरक (Aharon Barack), *द जंगल इन डेमोक्रेसी*, (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006).

दावा किया कि छत्तीसगढ़ राज्य के दाँतेवाड़ा जिले और इसके आस-पास के क्षेत्रों में सशस्त्र माओवादी/नक्सलवादी विद्रोह चल रहा है और छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा इस विद्रोह के दमन के लिए आक्रामक कार्रवाई शुरू की गई है। इसके कारण, इस क्षेत्र में लोगों के मानवाधिकारों का व्यापक तौर पर हनन हो रहा है। इस संदर्भ में यह दावा भी किया गया कि छत्तीसगढ़ राज्य सक्रिय रूप से एक समूह 'सलवा जुडूम' की गतिविधियों को बढ़ावा दे रहा है। दरअसल, यह एक सशस्त्र नागरिक निगरानी समूह (civil vigilante group) था। इसने पहले से चल रहे संघर्ष को और ज्यादा भड़काया और इसके कारण मानवाधिकारों का और ज्यादा व्यापक हनन होने लगा।

**24.** इस अदालत ने सुनवाई के विशिष्ट स्तरों पर बहुत से उचित आदेश पास किए। इसने पहले यह आदेश दिया था कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) को याचिका दायर करने वालों द्वारा लगाए गए गंभीर आरोपों की जाँच करनी चाहिए। अदालत ने यह भी कहा कि वह इसके लिए एक टीम गठित करे और अपनी रिपोर्ट अदालत को सौंपे। 25.08.2008 को मानवाधिकार आयोग ने अदालत में अपनी रिपोर्ट सौंपी। अदालत ने इसके बाद छत्तीसगढ़ सरकार को यह निर्देश दिया कि वह आयोग की इन सिफारिशों पर विचार करे। अदालत ने यह भी निर्देश दिया कि हत्या, हिंसक गतिविधियों और दूसरे अपराधों के जिन मामलों में प्राथमिकी (या एफआईआर) दर्ज नहीं हुई है, उनमें प्राथमिकी दर्ज की जाए। छत्तीसगढ़ सरकार को आगे यह निर्देश भी दिया गया कि वह किसी व्यक्ति के शव के मिलने पर मजिस्ट्रेट से जाँच कराए और 'कार्रवाई रिपोर्ट' पेश करे। 18.02.2010 को दिए अपने आदेश में अदालत ने यह कहा कि ''ऐसा लगता है कि राज्य सरकार के द्वारा 3000 एसपीओ'' (स्पेशल पुलिस अफसर या विशेष पुलिस अफसर) ''की नियुक्ति की गई है। यह नियुक्ति सामान्य पुलिस फोर्स के अलावा है और इसका मकसद कानून और व्यवस्था की स्थिति को संभालना है। हम इस बात को स्पष्ट करना चाहते है कि एसपीओ की नियुक्ति कानून के अनुसार की जाएगी।'' अदालत ने बहुत ही स्पष्ट रूप से यह भी दर्ज किया कि ''राज्य ने बहुत ही जोरदार तरीके से इस बात को भी नकारा है कि नागरिकों को निजी रूप से हथियार दिए गए हैं।''

**25.** इस केस की सुनवाई की प्रक्रिया के दौरान हमारे सामने बहुत से आरोप लगाए गए हैं। मानवाधिकार आयोग के कुछ निष्कर्षो पर जोर दिया गया और कुछ पर सवाल उठाए गए। हमने खासतौर पर तीन पहलूओं पर ध्यान दिया है। ये तीन पहलू इन मुद्दों से संबंधित हैं: (i) छत्तीसगढ़ के विभिन्न जिलों में स्कूलों और हॉस्टलों में सुरक्षा-बलों के रहने का मुद्दा; इस कारण, इन स्कूलों के विद्यार्थियों की पढ़ाई बाधित हो रही है; (ii) एसपीओ- जिन्हें

कोया कमांडो के रूप में भी जाना जाता है- के रोजगार की प्रकृति, उनके प्रशिक्षण के तरीके, पुलिस अफसरों के रूप में उनकी हैसियत, उन्हें अग्नेयास्त्र (अर्थात् बंदूक, रायफल, लांचर आदि जैसे हथियार; [आगे इसके लिए हथियार शब्द का ही प्रयोग किया गया है- अनुवादक]) दिए जाने का तथ्य और इन एसपीओ के द्वारा फैलाई गई बहुत ज्यादा हिंसा का मसला; और (iii) स्वामी अग्निवेश द्वारा लगाए गए नए आरोप। इन्होंने यह आरोप लगाया है कि मार्च 2011 में मोरापल्ली, टाडमेटला और तिमापुरम गाँवों में तीन सौ से ज्यादा घरों को जला दिया गया, महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया और तीन आदमियों की हत्या कर दी गई। यह भी आरोप लगाया गया है कि जब स्वामी अग्निवेश सिविल सोसायटी के दूसरे सदस्यों के साथ इन गाँवों की ओर जा रहे थे, तो उन पर दो अलग-अलग जगहों पर 'सलावा जुडूम' के सदस्यों ने हमला किया। स्वामी अग्निवेश का कहना है कि वे वहाँ मानवीय सहायता पहुँचाने और वहाँ के हालात के बारे में जानकारी लेने जा रहे थे। उन्हें छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री ने यह आश्वासन दिया था कि उन्हें पर्याप्त सुरक्षा मुहैया कराई जाएगी जिससे वे अपनी यात्रा और काम पूरा कर सकें। स्वामी अग्निवेश का यह आरोप है कि सुरक्षा बलों की मौजूदगी में उन पर हमला करने की इजाजत दी गई। यह बताया गया है और पहली नजर में देखने से ऐसा लगता है कि स्वामी अग्निवेश एक सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं और इस रूप में इनकी कुछ प्रतिष्ठा भी है। ये इस बात की वकालत करते हैं कि सामाजिक टकरावों को शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाया जाना चाहिए। स्वामी अग्निवेश ने नक्सलवादियों द्वारा अपहरण किए गए कुछ पुलिसकर्मियों की रिहाई के लिए भी काम किया था। खुद छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री रमन सिंह ने इस बात को स्वीकार किया है।

**26.** स्कूलों और हॉस्टलों में सुरक्षा-बलों के रहने के मुद्दे के संदर्भ में इस बात को नोट किया जाना चाहिए कि छत्तीसगढ़ सरकार ने बिल्कुल ही स्पष्ट तरीके से यह कहा था कि अब स्कूलों, अस्पतालों, हॉस्टलों और आँगनवाड़ियों में सुरक्षा-बल नहीं रह रहे हैं और इन सभी सुविधाओं को खाली करा लिया गया है। बहरहाल, अदालत में सामने सुनवाई के दौरान यह बात सामने आई कि पहले के शपथ-पत्र या हलफनामे में कही गई बातें गलत थीं और अभी भी बड़ी संख्या में स्कूलों के भीतर सुरक्षा-बल रह रहे हैं। इस अदालत के हस्तक्षेप और निर्देशों के बाद ही छत्तीसगढ़ सरकार ने स्कूलों और हॉस्टलों को सुरक्षा बलों के कब्जे से बाहर निकालने की प्रक्रिया शुरू की। यह प्रक्रिया अभी भी चल रही है। हम वर्तमान मामले में छत्तीसगढ़ सरकार के काम करने के ढ़ंग पर अपनी आपत्ति दर्ज करते हैं। पहले इस अदालत को बताया गया था कि स्कूलों, अस्पतालों, आश्रमों और आँगनवाड़ियों को

खाली करा लिया गया है। इसी कारण, अदालत ने सार्वजनिक कल्याण के लिए बुनियादी और महत्वपूर्ण आधारभूत संरचना और सार्वजिनक सुविधाओं पर सुरक्षा-बलों के कब्जे की ओर ध्यान नहीं दिया; और इसी वजह से इसने मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के दूसरे पहलूओं के संबंध में ही आदेश जारी किया। छत्तीसगढ़ सरकार ने अलग से एक हलफनामा दाखिल किया है तथा अदालत के निर्देशों का पालन करने के लिए कुछ और समय की माँग की है। इसका कारण यह है कि अभी भी बहुत से स्कूलों और हॉस्टलों में सुरक्षा बल रह रहे हैं। हम इस मसले पर अलग से विचार करेंगे।

**27.**आगे हमने दो अन्य मसलों पर विचार किया है अर्थात् (i) एसपीओ की नियुक्ति और (ii) स्वामी अग्निवेश द्वारा बताई गई तथाकथित घटनाएँ।

**28.**यहाँ इस बात को रेखांकित करना भी जरूरी है कि याचिककर्त्ताओं और प्रतिवादियों ने छत्तीसगढ़ और देश के दूसरे भागों में चल रहे सशस्त्र विद्रोह का उल्लेख माओवादी और नक्सल या नक्सलवादी- दोनों ही गतिविधियों के रूप में किया है। इन शब्दों का उपयोग अदल-बदल कर किया जाता है। दरअसल, विभिन्न समूह राज्यों के खिलाफ और दूसरे नागरिकों या समूहों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह करते हैं। इन्हीं विद्रोहों के बारे में बताने के लिए इन शब्दों का अदल-बदल कर उपयोग किया जाता है। हमने भी माओवादी गतिविधियों और नक्सल तथा नक्सलवादी गतिविधयों का अदल-बदल कर प्रयोग किया है।

## III

## एसपीओ की नियुक्ति और सेवा-शर्तें

**29.**याचिकाकर्त्ताओं द्वारा 'कोया कमांडो' के काम के बारे में ढ़ेर सारे आरोप लगाए हैं। अदालत ने छत्तीसगढ़ सरकार से यह पूछा की आखिर यह 'कोया कमांडो' क्या हैं? छत्तीसगढ़ सरकार ने दो अलग-अलग हलफनामों और एक लिखित नोट के द्वारा यह बताया और/या स्वीकार किया कि:

(i) 2004 से 2010 के बीच राज्य में नक्सलवादियों द्वारा 2298 हमले किए गए और इसमें पुलिस और अर्द्ध-सैनिक बलों के 538 जवान मारे गए; इस तरह के हमलों में 169 विशेष अफसर, 32 सरकारी कर्मचारी (पुलिस नहीं) और 1064 गाँव वाले मारे गए; 'एसपीओ राज्य के नक्सल प्रभावित जिलों की पूरी सुरक्षा व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा हैं'; दाँतेवाड़ा जिले का चिंतालनार क्षेत्र

सबसे बुरी तरह से प्रभावित इलाका है जहाँ एक ही बार में सुरक्षा बलों के 76 जवानों मारे गए थे।

(ii) छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा पहले दाखिल दूसरे हलफनामें में बताया गया है कि सलवा जुडूम बंद हो चुका है, एक 'फोर्स' के रूप अब इस इसका अस्तित्व नहीं है और यह सिर्फ प्रतीक के रूप में मौजूद है; याचिकाकर्त्ता और श्री अग्निवेश का यह दावा गलत समझ पर आधारित है कि सलवा जुडूम अभी एसपीओ और कोया कमांडो के रूप में सक्रिय है; कोया कमांडो एक आधिकारिक शब्द नहीं है और किसी को भी कोया कमांडो के रूप में नियुक्त नहीं किया गया है; कुछ एसपीओ कोया जनजाति से हैं और इनके लिए बहुत ही ढ़ीले-ढ़ाले अर्थ में 'कोया कमांडो' शब्द का प्रयोग किया जाता है; पहले एसपीओ की नियुक्ति 1861 के *इंडियन पुलिस एक्ट* (आईपीए या *भारतीय पुलिस कानून*) की धारा 17 के अंतर्गत जिलाधिकारी के द्वारा की जाती थी; इस कानून के अंतर्गत नियुक्त किए गए एसपीओ की शक्तियाँ, कर्त्तव्य और जवाबदेही आईपीए की धारा 18 के अंतर्गत तय होती थी; 2007 के *छत्तीसगढ़ पुलिस एक्ट* (सीपीए 2007) (या *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून*) के लागू हो जाने के बाद, अब एसपीओ की नियुक्ति सीपीए 2007 की धारा 9 के अंतर्गत होती है; एसपीओ को हर महीने 3000 रूपये 'मानदेय' (honorarium) (यह वेतन से अलग है; इसमें सरकार स्थायी नौकरी के दूसरे फायदे नहीं देती है- अनुवादक) दिया जाता है, जिसमें 80 प्रतिशत हिस्सा केन्द्र सरकार द्वारा दिया जाता है; एसपीओ की नियुक्ति मार्गदर्शक, जगह का पता लगाने वाले और अनुवादक के रूप में होती है। ये इंटेलिजेंस के स्रोत के रूप में काम करते हैं और इनकी अपनी सुरक्षा के लिए इन्हें हथियार दिए जाते हैं; दूसरे बहुत से राज्यों ने भी एसपीओ को नियुक्त किया है। नक्सलवादी लोग इनका विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि ये स्थानीय लोगों, बोली और इलाके से परीचित होते हैं, इसलिए ये इनके खिलाफ ज्यादा प्रभावकारी होते हैं; 28.03. 2011 को छत्तीसगढ़ में नियुक्त किए गए एसपीओ की कुल संख्या 6500 थी और भारत सरकार ने भी इस संख्या का अनुमोदन किया था। (यहाँ इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि एक साल पहले छत्तीसगढ़ सरकार ने इस अदालत को यह बताया था कि छत्तीसगढ़ में नियुक्त किए गए एसपीओ की कुल संख्या 3000 है। लेकिन छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा हाल में दाखिल किए गए शपथ-पत्र से यह बात उजागर होती है कि नियुक्त किए गए एसपीओ की संख्या बहुत ज्यादा है; इससे यह पता चलता है कि पिछले एक साल के भीतर एसपीओ की संख्या दोगुनी हो गई।)

**30.** छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा ऊपर वर्णित जानकारी देने वाले हलफनामों को दाखिल किए जाने के बाद हमने ऐसे बहुत से मुद्दों की ओर संकेत किया, जिसके बारे में इन हलफनामों में

कुछ भी नहीं कहा गया था। हमने कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाए तथा छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार को इनका जवाब देने का निर्देश दिया। अदालत द्वारा उठाए गए प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे: (i) इस तरह की नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएँ; (ii) उन्हें किस तरह का और कितनी प्रशिक्षण दिया गया है, यह बात इसलिए ज्यादा महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्हें हथियार दिए गए हैं; (iii) छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा इस तरह की गतिविधियों को नियंत्रित करने की विधि; (iv) एसपीओ द्वारा अपना 'कर्त्तव्य' निभाने के दौरान गंभीर रूप से घायल होने या मर जाने की स्थिति में उनके और उनके परिवारों की हिफाजत के लिए कौन से प्रावधान किए गए हैं; (अ) किसी नियुक्त किए गए एसपीओ को उसके पद से हटाने और एसपीओ के रूप में उसे दिए गए हथियार को वापस लेने के लिए किस तरह के प्रावधान और तरीके तय किए गए हैं। चूंकि एसपीओ की नियुक्ति अस्थायी अवधि के लिए ही की जाती है, इसलिए यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि उनके द्वारा अपना काम पूरा कर लिए जाने के बाद उनकी हिफाजत के लिए किस तरह के प्रावधान किए गए हैं। छत्तीसगढ़ सरकार ने इस बारे में 03.05.2011 को एक अतिरिक्त हलफनामा दाखिल किया। इसके अलावा, इसने 16.05.2011 को एक लिखित नोट भी दाखिल किया, जिस पर 11. 03.2011 की तारीख लिखी हुई थी। इनमें बताई गई बातों का सारांश इस प्रकार है:

(i) भारत सरकार 'सेक्योरिटी रेटेड एक्सपेंडीचर' (एसआरइ) (या सुरक्षा खर्च) योजना के अंतर्गत एसपीओ को दिए जाने वाले मानदेय की राशि राज्य सरकारों को वापस देती है, इसलिए वह यह फैसला करती है कि हर राज्य में एसपीओ की अधिकतम संख्या कितनी हो सकती है।

(ii) वर्तमान में छत्तीसगढ़ सरकार 2007 के *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून* (सीपीए 2007) की धारा 9 (1) के अंतर्गत एसपीओ की भर्ती करती है। सीपीए 2007 की धारा 9 (2) के अनुसार एसपीओ को 'छत्तीसगढ़ पुलिस के कोआर्डिनेट कांस्टेबुलरी और सबोर्डिनेट (या अधीनस्थ) के बराबर शक्ति और विशेषाधिकार होता है, इनके काम भी इन्हीं की तरह होते हैं;' एसपीओ छत्तीसगढ़ की पुलिस फोर्स के अभिन्न भाग हैं। 'किसी भी अन्य पुलिस अफसर की तरह ही वे भी सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या एसपी) के आदेश, नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अंतर्गत आते हैं...;' ठीक तरीके से काम न करने के कारण 1200 एसपीओ को निलंबित किया गया है, और यदि उन्हें अपने काम में लापरवाही का दोषी पाए जाने पर उनके कार्यकाल का नवीनीकरण या विस्तार नहीं किया जाएगा। (हालांकि, लिखित नोट में यह कहा गया है कि एसपीओ को 1861 के *भारतीय पुलिस कानून* के अंतर्गत नियुक्त किया गया है)।

(iii) एसपीओ 'सहायक फोर्स और फोर्स की ताकत को बहुत ज्यादा बढ़ाने' (auxiliary force and force multiplier) का काम करते हैं। एसपीओ की नियुक्ति की सिफारिश वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाली दूसरे प्रशासनिक सुधार आयाोग ने की है।

(iv) छत्तीसगढ़ में नियमित पुलिस और अन्य सुरक्षा बलों की कमी की समस्या को खत्म करने में एसपीओ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। छत्तीसगढ़ सरकार ने 2007 एक तीन सदस्यों वाली एक समिति का गठन किया था। इस समिति को नक्सलवादी समस्या से निपटने की कार्ययोजना तैयार करनी थी। यह समिति गणना करके इस नतीजे पर पहुँची कि राज्य में कुल 70 बटालियनों की जरूरत है। अभी राज्य में सिर्फ 40 बटालियन ही हैं; इनमें से 24 बटालियन केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बल से, 6 भारतीय रिजर्व पुलिस से और 10 राज्य बटालियनों से हैं। इस तरह राज्य में जरूरत से कुल 30 बटालियनें कम हैं।

(v) नक्सलवादियों द्वारा विस्थापित हुए गाँववालों के राहत शिविरों पर हमला किया जा रहा है। इस कारण एसपीओ की नियुक्ति आवश्यक है। 2005 से 2011 के बीच माओवादियों ने कुल 41 बार हमला किया, इसमें 47 लोग मारे गए और 37 घायल हुए। सिर्फ दाँतेवाड़ा जिले में माओवादियों ने इस दौरान कुल 24 बार हमले किए, इसमें 37 लोग मारे गए और 26 घायल हुए। आदिवासी युवक इसलिए एसपीओ बन रहे हैं क्योंकि वे ''हिंसक हमलों से अपनी तथा अपने परिवार के सदस्यों/गाँवों की सुरक्षा करना चाहते हैं।'' ''नक्सल हिंसा का शिकार हुए और नक्सल प्रभावित क्षेत्रों के युवकों को स्थानीय क्षेत्र, बोली तथा नक्सलियों और उनसे हमदर्दी रखने वाले लोगों की जानकारी होती है। ये युवक स्वेच्छा से आगे आए और उन्होंने एसपीओ के रूप में भर्ती होने की इच्छा जताई। इन युवकों का चरित्र प्रमाणीकरण करने के बाद एसपीओ के रूप में भर्ती किया गया।'' इन आदिवासी युवकों को इनके इलाके के थाना प्रभारी और राजपत्रित (या 'गजटेड') पुलिस अधिकारियों की सिफारिश पर सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या आरक्षी अधीक्षक या एसपी) के द्वारा अस्थायी रूप से एसपीओ बनाया गया है।

(vi) 1861 के *भारतीय पुलिस कानून* या 2007 के *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून* में एसपीओ के लिए किसी योग्यता का उल्लेख नहीं किया गया है। फिर भी, एसपीओ की नियुक्ति में 'पाँचवी कक्षा पास लोगों को वरीयता दी जाती है।' 18 साल से बड़े और स्थानीय भूगोल की जानकारी रखने वाले लोगों की नियुक्ति की जाती है और यह काम तय किए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार किया जाता है।

(vii) एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए आदिवासी युवकों को कुल दो महीने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें निम्नलिखित प्रशिक्षण शामिल हैं: (क) बंदूक चलाना, (ख) प्राथमिक चिकीत्सा और स्वास्थ्य की देखभाल; (ग) फील्ड और क्राफ्ट ड्रील (फील्ड और कौशल से संबंधित अभ्यास); (घ) यूएसी और योग का प्रशिक्षण- इसके अलावा प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के 'बुनियादी और शुरूआती ज्ञान' को भी शामिल किया है, जिसके बारे में अलग से कक्षाएँ चलती हैं; (ड.) विभिन्न कानूनों (आईपीसी, सीआरपीसी, प्रमाण कानून या इविडेंस एक्ट, माइनर एक्ट आदि) के लिए 24 पीरियड या घंटा; (च) 12 पीरियड में मानवाधिकारों और संविधान के अन्य प्रावधानों की जानकारी; (छ) पुलिस के काम में वैज्ञानिक और फॉरेंसिक सहायता के बारे में 6 पीरियड; (ज) सामुदायिक निगरानी के बारे में 6 पीरियड; (झ) बस्तर की सभ्यता और संस्कृति के बारे में 9 पीरियड; इसमें हर पीरियड एक घंटे का होता हैं। अदालत को सौंपी गई प्रशिक्षण की समय-सारणी इस बात का प्रमाण है।

(viii) प्रशिक्षण के बाद इन एसपीओ को उनके स्थानीय क्षेत्र में रखा जाता है और ये पुलिस के नेतृत्व में काम करते हैं। एसपी (सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस), थाना प्रभारी (एसएचओ)/एसडीओपी/सहायक एसपी के द्वारा एसपीओ को आदेश देता है और इन पर नियंत्रण रखता है; अतीत में 1200 एसपीओ को अपना कर्त्तव्य पूरा न करने में लापरवाही करने और दूसरे तरह की अनुशासनहीनता के कारण उनके काम से हटाया गया है। आपराधिक कानूनों के तहत 22 एसपीओ के खिलाफ केस दर्ज किए गए हैं और उनके खिलाफ कानून के मुताबिक कार्रवाई की गई है।

(ix) ''वर्ष 2005 से 2011 के बीच'' **173 एसपीओ ने ''अपना कर्त्तव्य निभाते हुए अपने जीवन की कुर्बानी दे दी और 117 एसपीओ घायल हुए;''** एसपीओ की मौत और/या घायल होने के स्थिति में उसके सबसे नजदीकी सगे-संबंधी को राहत और पुनर्वास के लिए मदद देने के संबंध में कुछ खास प्रावधान किए गए हैं, मसलन इन्हें अनुग्रह राशि या एक्स-ग्रेसिया (ex-gratia) सहायता दी जाती है।

(x) छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद के खिलाफ संघर्ष में लगे अधिकांश सुरक्षाकर्मी राज्य से बाहर के हैं। उन्हें स्थानीय इलाके, इसके भूगोल और संस्कृति की जानकारी नहीं होती है। इन्हें यह भी पता नहीं होता है कि कौन लोग नक्सली या उनके समर्थक आदि हैं। इससे राज्य की कार्रवाई में बाधा पहुँचती है। स्थानीय एसपीओ अपने इलाकों की जानकारी के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुए हैं; राहत शिविरों में स्थानीय अफसरों आदि जैसे कामों में भी इन्होंने जबर्दस्त भूमिका निभाई है। ये

राहत शिविरों पर एक दर्जन से ज्यादा माओवादी हमलों को नाकाम करने में सफल रहे हैं। इन्होंने कई दफा नियमित सुरक्षा बलों की जान भी बचाई है।

(xi) एसपीओ को ''नियमित सुरक्षा बलों का भाग माना जाता है और राज्य इनकी जरूरतों का ख्याल रखता है;'' इस बात का एक प्रमाण यह है कि छत्तीसगढ़ सरकार ने कांस्टेबल की भर्ती में नक्सल हिंसा से प्रभावित हुए लोगों को विशेष छूट दी। कुल 700 एसपीओ भर्ती परीक्षा में सफल हुए और उन्हें कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया।

(xii) छत्तीसगढ़ सरकार ने दिनांक 06.05.2011 को विशेष पुलिस अफसर (नियुक्ति, प्रशिक्षण और सेवा-शर्त) नियमन प्रक्रिया 2011 ('न्यू रेग्यूलेटरी प्रोसिजर्स' या नई नियमन प्रक्रियाएँ) तैयार की हैं।

31. यहाँ इस बात को नोट करना चाहिए कि न्यू रेग्यूलेटरी प्रोसिजर्स या नई नियमन प्रक्रियाओं के अंतर्गत बने नियम तभी बने जब इस अदालत ने इस मामले पर सुनवाई की और इसके संबंध में अपने निर्देश सुरक्षित (reseved) रखे। 16 मई 2011 को दाखिल किए गए एक लिखित नोट में यह दावा किया गया है कि ''एसपीओ के प्रशिक्षण की ज्यादा अच्छी समय-सारणी तैयार करने के पीछे मुख्य विचार यह है कि एसपीओ को स्थानीय आदिवासियों की समस्याओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाया जाए। एसपीओ अलगाव का शिकार हो गए आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।'' लिखित नोट में आगे यह तर्क भी दिया गया कि ''यदि याचिकाकर्त्ताओं की एसपीओ को खत्म करने की माँग मान ली गई, तो इससे छत्तीसगढ़ राज्य की कानून व्यवस्था बर्बाद हो जाएगी।'' छत्तीसगढ़ सरकार ''एसपीओ के प्रशिक्षण को और ज्यादा बेहतर बनाना चाहती है ताकि एक प्रभावकारी और कार्यकुशल पुलिस फोर्स तैयार हो पाए;'' और इसी मकसद को हासिल करने के लिए नई नियमन प्रक्रियाएँ बनाई गई हैं।

32. भारत सरकार ने एसपीओ की नियुक्ति, सेवा और प्रशिक्षण के बारे में 03.05.2011 को हलफनामा दाखिल किया। इसके अलावा, भारत सरकार ने 'वाम-चरमपंथ' (या माओवादियों) से निपटने के बारे में एक व्यापक नीतिगत बयान भी जारी किया है। छत्तीसगढ़ सरकार ने इन दोनों पर बहुत ज्यादा भरोसा जताया है। आगे संक्षेप में भारत सरकार द्वारा दाखिल किए गए शपथ-पत्र की मुख्य बातों का उल्लेख किया गया है:

(i) पुलिस और सार्वजनिक व्यवस्था राज्य के विषय हैं और इस बात में मुख्य रूप से राज्य सरकार की जवाबदेही बनती है। लेकिन विशेष परिस्थितियों में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों के प्रयासों को 'सेक्योरिटी रेटेड एक्सपेंडिचर' (या सुरक्षा खर्च) योजना के तहत मदद देती है। यह योजना को वाम-चरमपंथ सहित सुरक्षा संबंधी दूसरी बड़ी समस्याओं का सामना कर रहे राज्यों की मदद करने के लिए तैयार की गई है। वर्तमान में 9 राज्यों के 83 जिले इस योजना के अंतर्गत आते हैं। इन राज्यों में छत्तीसगढ़ भी शामिल है। इस योजना में भारत सरकार राज्यों की 'क्षमता बढ़ाने' के लिए उनकी सुरक्षा संबंधी कुछ गतिविधियों को आर्थिक मदद मुहैया कराता है। इस हलफनामे में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि विभिन्न राज्यों में एसपीओ को अलग-अलग मानदेय दिया जाता हैं इसका कारण यह है कि केन्द्र सरकार अलग-अलग राज्यों में मानदेय की अलग-अगल राशि देती है। भारत सरकार द्वारा एक एसपीओ के लिए सबसे ज्यादा 3000 और सबसे कम तकरीबन 1500 रूपये दिया जाता है।

(ii) भारत सरकार ने बहुत ही स्पष्ट तरीके से यह बात कही है कि एसपीओ की नियुक्ति और इनके काम में इसकी भूमिका इतनी ही है कि ''वह हर राज्य के लिए एसपीओ की अधिकतम संख्या का अनुमोदन करती है, ताकि वह एसआरई (या सेक्योरिटी रेटेड एक्सपेंडीचर) (या खर्च दर) योजना के तहत उन्हें आर्थिक मदद दे पाए।'' असल में, ''एसपीओ की नियुक्ति, प्रशिक्षण, भूमिका और दायित्वों के बारे में संबंधित राज्य सरकारें ही फैसला करती हैं।'' भारत सरकार ने बिल्कुल साफ तरीके से यह कहा है कि ''राज्य सरकारें भारत सरकार के गृह विभाग के अनुमोदन से आगे जाकर भी कानून के अनुसार एसपीओ की नियुक्ति कर सकती हैं।''

(iii) भारत सरकार ने अपने हलफनामे में इस बात पर भी जोर दिया कि ''ऐतिहासिक रूप से एसपीओ ने विभिन्न राज्यों में विद्रोह की स्थितियों से निपटने और कानून व्यवस्था कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।'' भारत सरकार ने अपने हलफनामे में वाम-चरमपंथ के बारे में यह टिप्पणी की है कि **''पीपल्स लिबरेशन गुरिल्ला आर्मी...ने 'जन मिलिशिया' के रूप में सहायक फोर्स (auxiliary force) तैयार किया है; उन्होंने इसमें स्थानीय लोगों को भर्ती किया है; इन लोगों को इस इलाके और इसकी बोली का ज्ञान है और ये स्थानीय जनसंख्या से भी सुपरीचित हैं। राज्य सरकारें एसपीओ की मदद से यही काम करना चाहती हैं। एसपीओ की भर्ती स्थानीय स्तर पर की जाती है और ये अपने इलाके, इसकी बोली और यहाँ की जनसंख्या से सुपरिचित होते हैं।''** भारत सरकार एसआरई (सुरक्षा खर्च) योजना के

तहत विभिन्न राज्यों में नियुक्त किए गए तकरीबन 70,046 एसपीओ के मानदेय का एक हिस्सा राज्य सरकारों को वापस करती है।

**33.**इस स्तर पर यह नोट करना भी जरूरी है कि भारत सरकार के हलफनामे से यह स्पष्ट नहीं है कि छत्तीसगढ़ में एसपीओ के विशेष उपयोग के बारे में इसका क्या नजरिया है। यानी इसने यह स्पष्ट नहीं किया है कि एसपीओं को हथियार देने, उन्हें दिए जाने वाले प्रशिक्षण और काम की प्रकृति के बारे में इसका क्या मानना है। इसके हलफनामे में बहुत ही अस्पष्ट तरीके से यह कहा गया है कि एसपीओ 'फोर्स' की ताकत को बहुत ज्यादा बढ़ाने (force multiplier) का काम करते हैं। लेकिन इसमें इस बात की व्याख्या नहीं की गई है कि इसका क्या मतलब है। यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्या 'फोर्स' की ताकत का बहुत ज्यादा बढ़ना (multiplied) इस बात इस पर निर्भर करता है कि एसपीओ से किस तरह के काम लिए जाते हैं, उनका प्रशिक्षण कैसा है और उनके पास हथियार हैं या नहीं। इन बातों की व्याख्या किए बिना ही भारत सरकार ने यह कहा है कि एसपीओ ने अशांत क्षेत्रों में खुफिया सूचनाओं को इकट्ठा करने, तथा स्थानीय निवासियों और संपत्ति की सुरक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत सरकार ने अपने हलफनामे के द्वारा एसपीओ की उपयोगिता के बारे में तीन अन्य बातों पर जोर दिया है:

(i) ''सेना/सीपीएमएफ के जवान एक जगह पर बहुत समय तक नहीं रहते और उन्हें एक-जगह से दूसरी जगह भेजा जाता है। ऐसे में, जिला पुलिस की सहायता बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाती है।

(ii) भारत सरकार यह चाहती है कि 'कानूनी रूप से एसपीओ के साथ शक्तियों, दंड और अधीनता आदि के संदर्भ में समान पुलिस अफसरों की तरह ही बरताव हो।''

(iii) ''विद्रोह के दमन और आतंकवाद के विरोध के साथ-ही-साथ कानून और व्यवस्था के संदर्भ में राज्य सरकारों की योजनाओं को लागू करने के संदर्भ में एसपीओ की भूमिका बहुत ज्यादा प्रासंगिक है।''

**34.**इसके अलावा, भारत सरकार ने इस बात पर भी जोर दिया कि ''प्रभावित राज्यों में सुरक्षा बलों की क्षमता को बढ़ाना बहुत ही जरूरी है। संबंधित राज्य सरकारों द्वारा बहुत से कदम उठाए जाने के बावजूद सीपीआई (माओवादी) अंधाधुंध और निरर्थक हिंसा करती रही है।'' इस संदर्भ में भारत सरकार ने यह जानकारी दी है कि ''वर्ष 2010 में पूरे भारत में नक्सली

समूहों द्वारा कुल 1003 लोगों की हत्या की गई। इसमें 718 आम नागरिक और 285 सुरक्षा बलों के कर्मचारी थे। मारे गए आम नागरिकों में से 323 को 'पुलिस का मुखबिर' बताकर मारा गया।''

**35.** भारत सरकार ने अपने हलफनामें के आखिर में ये बातें लिखीं:

*''भारत सरकार निर्दोष नागरिकों के मानवाधिकारों की इज्जत करने के प्रति वचनबद्ध है। भारत सरकार ने राज्यों से जोर देकर यह कहा है कि सीपीआई (माओवादी) के द्वारा की जा रही हिंसा से निपटने के दौरान सुरक्षा बलों को पूरी चौकसी और धीरज के साथ काम करना चाहिए। भारत सरकार राज्य सरकारों को यह सुझाव जारी करेगी कि वे कांस्टेबल या एसपीओ की भर्ती करते समय सावधानी से जाँच-पड़ताल और प्रमाणीकरण करें, प्रशिक्षण के स्तर को सुधारें और उन्हें मानवाधिकारों के बारे में बताएँ। इसके अलावा, राज्य सरकारों से यह कहा जाएगा कि वे पर्यवेक्षक अफसरों को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दें कि प्रभावित इलाकों में ऑपरेशन के दौरान कांस्टेबलों और एसपीओ द्वारा कानून तथा सख्त अनुशासन का पालन किया जाए।''*

**<u>विश्लेषण:</u>**

**36.** यह माना जाता है कि कुछ प्रमुख कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत एसपीओ की नियुक्ति की जाती है; और इन्ही कानूनों में उनकी भूमिका, कर्त्तव्यों आदि के बारे में बताया गया है। यहाँ इन प्रमुख कानूनी प्रावधानों को रेखांकित करना आवश्यक है। ये कानूनी प्रावधान इस प्रकार हैं:

1861 के *इंडियन पुलिस एक्ट* या *भारतीय पुलिस कानून* की धारा 17:

*''विशेष पुलिस अफसर: मान लीजिए कभी ऐसा लगेगा कि लोग गैर-कानूनी रूप से जमा हुए हैं या दंगा कर रहे हैं या अशांति उत्पन्न कर रहे हैं या फिर तार्किक रूप से इन बातों की आशंका हो; और मान लीजिए कि इस स्थान पर सामान्य तौर पर शांति कायम रखने के लिए तैनात की गई पुलिस फोर्स शांति कायम करने और यहाँ रहने वाले लोगों तथा उनकी संपत्ति की सुरक्षा करने के लिए पर्याप्त न हो; ऐसे में इंस्पैक्टर की रैंक वाला कोई भी पुलिस अफसर नजदीकी मजिस्ट्रेट से यह आवेदन कर सकता है कि वह आस-पास के क्षेत्रों से उतने निवासियों को पुलिस ऑफिसर बनाए, जितने की जरूरत हो; वही इस बात को तय करता है कि इस तरह के पुलिस अफसरों की नियुक्ति का समय क्या होगा और उनकी नियुक्ति कितने समय के लिए की जाएगी; जिस*

*मजिस्ट्रेट को इस तरह का आवेदन दिया जाता है, यदि उसे इसे नकारने का कोई मजबूत कारण नहीं दिखता है तो वह इसका अनुपालन करता है।''*

1861 के *भारतीय पुलिस कानून* की धारा 18:

*''विशेष पुलिस अफसरों की शक्तियाँ: इस तरह नियुक्त किए गए हर विशेष पुलिस अफसर को सामान्य पुलिस अफसरों जैसी ही शक्तियाँ, विशेषाधिकार और सुरक्षा हासिल होंगी; वह इन्हीं की तरह के कर्त्तव्य निभाएगा और उसे भी इन्हीं की तरह दंड दिया जा सकेगा; यह उन्हीं प्राधिकारियों के अधीनस्थ होगा, जिसके अधीन सामान्य पुलिस अफसर काम करते हैं।''*

1861 के *भारतीय पुलिस कानून* की धारा 19:

*''विशेष पुलिस अफसरों द्वारा काम करने से नकारना: यदि किसी व्यक्ति को ऊपर बताई गई प्रक्रिया के अनुसार विशेष पुलिस अफसर के रूप में नियुक्त किया जाता है, और वह बिना किसी पर्याप्त कारण के इस तरह काम करने से मना करता है या उसे दिए गए कानूनी आदेश और निर्देशों को मानने से इंकार करता है, और उसे मजिस्ट्रेट के सामने दोषी पाया जाता है तो इस तरह की हर लापरवाही, इंकार या अवज्ञा के लिए उस पर अधिकतम पचास रूपये का जुर्माना लगाया जाएगा।''*

**37.**वर्ष 2007 में छत्तीसगढ़ सरकार ने *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून* (या छत्तीसगढ़ पुलिस एक्ट) 2007 लागू किया। इसके कुछ प्रासंगिक अंशों का नीचे उल्लेख किया गया है:

*धारा 1(2): यह कानून जिस दिन आधिकारिक गजट में प्रकाशित होगा, उस दिन से लागू माना जाएगा।*

*धारा 2(एन): 'पुलिस अफसर' का अर्थ इस कानून के अंतर्गत या इस कानून के लागू होने से पहले नियुक्त हुए पुलिस फोर्स के किसी सदस्य से है। इसमें इस राज्य के लिए काम कर रहे भारतीय पुलिस सेवा के सदस्य, या राज्य पुलिस के 'डेपुटेशन' पर काम कर रहे किसी भी अन्य पुलिस संगठन के सदस्य, या इस कानून की धारा 9 या 10 के अंतर्गत नियुक्त हुए लोग शामिल हैं;*

*धारा 2(के): निर्धारित* (prescribed) *करने का अर्थ नियमों से निर्धारित करने से है;*

*धारा 2(ओ): 'नियमों' का अर्थ इस कानून के अंतर्गत बने नियमों से है;*

*धारा 9(1): सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या एसपी) निर्धारित नियमों का पालन करते हुए किसी भी समय एक लिखित आदेश के द्वारा किसी व्यक्ति को विशेष पुलिस अफसर (या एसपीओ) के रूप में नियुक्त कर सकता है। उस व्यक्ति की नियुक्ति के आदेश में ही इस बात का उल्लेख रहता है कि उसे कितने समय के लिए नियुक्त किया जा रहा है।*

*धारा 9(2): इस तरह से नियुक्त हर विशेष पुलिस अफसर को पास सामान्य पुलिस अफसर जैसी शक्तियाँ, विशेषाधिकार और सुरक्षा हासिल होगी, ये इन्हीं की तरह कर्त्तव्य निभाएँगे, इनके लिए भी सामान्य पुलिस अफसरों की तरह ही दंड का प्रावधान होगा और ये एक ही जैसे प्राधिकार के अधीन होंगे।*

*धारा 23: एक पुलिस अफसर के निम्नलिखित कार्य और उत्तरदायित्व होंगे:*

*1 (ए) कानून को लागू करना, तथा लोगों की जिंदगी, स्वतंत्रता, संपत्ति, अधिकार और गरिमा की सुरक्षा करना;*

*(बी) अपराध और सार्वजनिक उपद्रव को रोकना;*

*(सी) सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखना;*

*(डी) आंतरिक सुरक्षा कायम रखना, आतंकवादी गतिविधियों का रोकना और नियंत्रित करना, और सार्वजनिक शांति को भंग होने से रोकना;*

*(इ) सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा करना;*

*(एफ) अपराधों की जाँच करना और अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाना;*

*(जी) उन लोगों को गिरफ्तार करना जिसे गिरफ्तार करने का कानूनी प्राधिकार उसके पास हो और जिन्हें गिरफ्तार करने का पर्याप्त आधार हो;*

(एच) प्राकृतिक आपदा या व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न की गई आपदा की स्थिति आने पर लोगों की मदद करना, और राहत कार्यों में दूसरी एजेंसियों की सहायता करना;

(आई) लोगों और वाहनों के व्यवस्थित आवागमन को सुनिश्चित करना और ट्रैफिक का नियंत्रण करना;

(जे) सार्वजनिक शांति को प्रभावित करने वाले और अपराध से जुड़े मसलों पर खुफिया सूचनाएँ जुटाना

(के) जब सार्वजनिक प्राधिकारी अपना काम कर रहे हों, तो उन्हें सुरक्षा मुहैया करना;

(एल) ऐसे सारे काम और जिम्मेदारियाँ निभाना जो कानून के द्वारा एक ऐसे प्राधिकारी के द्वारा दी जाएँ, जो कानूनन इस तरह का आदेश जारी करने में समर्थ हो।

*धारा 24:* जब भी किसी पुलिस अफसर को राज्य के भीतर काम पर लगाया जाएगा या राज्य के बाहर भेजा जाएगा, तो हमेशा ही यह माना जाएगा कि वह 'ड्युटी' पर है।

*धारा 25:* इस कानून के अनुसार कोई भी पुलिस अफसर किसी दूसरे रोजगार या ऑफिस से कोई ताल्लुक नहीं रखेगा। वह केवल उसी स्थिति में ऐसा कर सकता है जब राज्य सरकार उसे लिखित रूप में ऐसा करने की इजाजत दे।

*धारा 50(1):* राज्य सरकार इस कानून के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियम बना सकती है: शर्त यह है कि राज्य पुलिस के वर्तमान रेग्युलेशन बदलाव होने या निरस्त होने तक जारी रहने चाहिए।

*धारा 50(2):* इस कानून के अंतर्गत बने सभी नियमों को जल्द-से-जल्द राज्य विधानसभा में पेश किया जाएगा।

*धारा 53(1):* अब से छत्तीसगढ़ राज्य में भारतीय पुलिस कानून (1861 का नम्बर 5) रद्द किया जाता है; अब राज्य में इसे लागू नहीं किया जाएगा।

**38.** यह बात स्पष्ट है कि न तो धारा 9(1) और न ही धारा 9(2) में यह बताया गया है कि सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या एसपी) किन शर्तों के अनुसार और किन हालातों में 'किसी व्यक्ति' को 'विशेष पुलिस अफसर' (एसपीओ) के रूप में नियुक्त कर सकता है। यदि यह नहीं बताया जाता है कि कितने एसपीओ की नियुक्ति की जा सकती है, उनकी योग्यता क्या होगी या उन्हें किस तरह का प्रशिक्षण दिया जाएगा या उनका कर्त्तव्य क्या होगा, तो यह एसपी को विशेष शक्ति देने की तरह होगा। यानी वह इसके लिए किसी के प्रति जवाबदेह नहीं होगा। इस तरह की अनिर्देशित या असीमित शक्ति देना अनुच्छेद 14 के अनुसार गलत होगा; इसके सही होने का एकमात्र उपाय यही होगा कि इसके प्रावधानों को इस तरह तोड़-मरोड़ कर पढ़ा जाए कि इसे असंवैधानिकता की बुराई से बचाए जा सके। *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून* 2007 के अनुच्छेद 9(1) और अनुच्छेद 9(2) की तुलना ब्रिटिश दौर में बने *भारतीय पुलिस कानून* की धारा 17 से की जा सकती है। *भारतीय पुलिस कानून* की धारा 17 उन परिस्थितियों के बारे में बताती है जिसके अंतर्गत एसपीओ की नियुक्ति की जा सकती है। यह इस बात को भी स्पष्ट करती है कि नियुक्ति के लिए किस तरह की शर्तें पूरी होनी चाहिए। *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून 2007* की धारा 9(1) और 9(2) में इस तरह की परिस्थितियों या शर्तों के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है। इसी तरह, इस कानून की धारा 23 में कार्यों और जिम्मेदारियों के बारे में बताया गया है; ये वे जिम्मेदारियाँ हैं जिन्हें कोई एसपीओ अपने ऊपर ले सकता है; इस संदर्भ में धारा 23 (1)(एच) और धारा 23(ए)(आई) में को ही कायम रखना है; इसके अन्य धाराओं की उपेक्षा करनी है।

**39.** छत्तीसगढ़ सरकार ने इस अदालत में लंबी सुनवाई होने के बाद नई नियमन प्रक्रियाओं या 'न्यू रेग्युलेटरी प्रोसिजर्स' को अधिसूचित करके अदालत में दाखिल कर दिया है। हमने इन प्रक्रियाओं की समीक्षा की है। हम इसकी अंतर्वस्तु से बहुत प्रभावित नहीं हुए हैं। इस तरह की नियमन प्रक्रियाओं से यह भरोसा नहीं जगता है कि इनसे स्थिति बेहतर हो पाएगी।

**40.** इन नए नियमों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं। एसपीओ की नियुक्ति जिन परिस्थितियों में हो सकती है, उसमें 'आतंकवादी/चरमपंथी' घटनाओं के होने या उनके होने के संदेह को भी शामिल किया गया है। एसपीओ की योग्यता के बारे में नियमों में यह कहा गया है कि यदि बाकी योग्यताएँ बराबर हैं तो ''जिस व्यक्ति ने पाँचवी कक्षा पास की होगी, उसे वरीयता दी जाएगी।'' इसके अलावा, नियमों में यह भी स्पष्ट किया गया है कि एसपीओ को ''उस इलाके की खास समस्या का नियंत्रण और उसका रोकथाम करने के लिए पुलिस की मदद करने में समर्थ होना चाहिए।'' 'आतंकवादी/चरमपंथी' घटनाओं और गतिविधियों

को भी परिस्थितियों यानी किसी इलाके की खास समस्या में शामिल किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि एसपीओ की नियुक्ति करने का मकसद यह है कि उन्हें विद्रोह के दमन की गतिविधियों में शामिल किया जाए। सच्चाई यह है कि नियमों की भाषा से यह संकेत मिलता है कि एसपीओ की भूमिका किसी स्थान के बारे में बताने, मार्गदर्शन करने आदि जैसे कामों तक ही सीमित नहीं रहेगी। दरअसल, इस बात की पूरी संभावना है कि आतंकवादियों/चरमपंथियों से सीधे मुकाबले को भी इनके काम में शामिल किया जा सकता है। इसके अलावा, एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए व्यक्ति को केवल तभी प्रशिक्षण दिया जाएगा, जब सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या एसपी) को ''यह लगे कि उसे प्रशिक्षण देना आवश्यक है।'' फिर, यदि किसी व्यक्ति को कम-से-कम एक साल के लिए नियुक्त किया जा रहा हो और उसे अपनी सुरक्षा के लिए कोई हथियार दिया जा रहा हो, तभी उसे प्रशिक्षण दिया जाएगा। इस तरह के प्रशिक्षण में कम-से-कम तीन महीने की अवधि में ''हथियार, मानवाधिकार और कानून'' के बारे में बताया जाएगा। एसपीओ के रूप में नियुक्ति ''पूरी तरह से अस्थायी प्रकृति की होती है।'' सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस ''बिना कोई कारण बताए'' इस नियुक्ति को रद्द कर सकता है। एसपीओ को सिर्फ मानदेय और ''राज्य सरकार द्वारा समय-समय मंजूर किए गए'' अन्य फायदे मिलते हैं।

41. हम स्पष्ट तौर पर यह कहना चाहते हैं कि हमें इन मामलों के संबंध में भारत सरकार की भूमिका से भी गहरी निराशा हुई है। यह बात पूरी तरह से सच है कि पुलिस और कानून व्यवस्था राज्य के विषय हैं। भारत सरकार ने अपने हलफनामे में यह कहा है कि छत्तीसगढ़ राज्य में एसपीओ की नियुक्ति के संबंध में इसकी भूमिका सिर्फ यह है कि यह एसपीओ की कुल संख्या का अनुमोदन करती है और उन्हें दिए जाने वाले मानदेय की राशि राज्य सरकारों को वापस करती है। अर्थात् उसने इस बारे में कोई निर्देश जारी नहीं किया कि एसपीओ की भर्ती किस तरह होनी चाहिए, उन्हें किस तरह प्रशिक्षण दिया जाए या उन्हें किस मकसद से विभिन्न स्थानों पर रखा जाए। दरअसल, इन मसलों पर इसने अपने संवैधानिक जिम्मेदारियों की बहुत ही गलत व्याख्या की है। संविधान के अनुच्छेद 355 में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि ''संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हर राज्य को बाहरी हमले और आंतरिक अशांति से बचाए और यह सुनिश्चित करे कि हर राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार काम करे।'' संविधान ने भारतीय राज्य को यह सकारात्मक दायित्व दिया है कि वह सभी नागरिकों के मूल अधिकारों की हिफाजत करने के लिए जरूरी कदम उठाए। कुछ मामलों में उसे गैर-नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए भी जरूरी कदम उठाने के कहा गया है। संविधान में भारतीय राज्य को भारत के

लोगों के लिए ऐसी स्थिति लाने के लिए कहा गया है जिसमें हर किसी की मानवीय गरिमा की सुरक्षा हो और वे बंधुत्व के साथ रह सकें। संविधान द्वारा भारतीय राज्य को दिए गए कामों और जिम्मेदारियों को देखते भारत सरकार द्वारा इस अदालत में दाखिल किया गया हलफनामा बहुत ही निराशाजनक है। भारत सरकार ने अदालत के विशेष निर्देश पर यह हलफनामा दाखिल किया था। अदालत ने इसे एक हलफनामा दाखिल कर यह बताने के लिए कहा था कि छत्तीसगढ़ में एसपीओ की नियुक्ति के संदर्भ में उसकी क्या भूमिका है। इसने अपने हलफनामे में यह दावा किया है कि एसपीओ की नियुक्ति में उसकी बहुत ही सीमित भूमिका है। इसके हलफनामे पर एक सरसरी निगाह डालने से ही इस बात का पता चल जाता है कि इसका मकसद कानून की आड़ में अपनी जिम्मेदारियों को कम करना है। इसने अपने हलफनामे में इस पूरे मसले में शामिल गंभीर संवैधानिक मुद्दों के बारे में सही चिंता नहीं दिखाई है।

**42.** तथ्य यह है कि भारत सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता ने ही छत्तीसगढ सरकार को बहुत कम पढ़े-लिखे युवकों को एसपीओ के रूप में नियुक्त करने में समर्थ बनाया है। छत्तीसगढ़ सरकार ने इन्हें हथियार दिए हैं। यह उनसे वो काम करवा रही है जिसे सिर्फ आधिकारिक और औपचारिक पुलिस फोर्स को ही करना चाहिए। हजारों आदिवासी युवकों को एसपीओ के रूप में नियुक्त किया गया है और इन्हें हर महीने 3000 रूपये का मानदेय दिया जाता है। भारत सरकार यह राशि राज्य सरकार को वापस करती है। भारत सरकार को इस बात का मूल्यांकन करने की जरूरत महसूस नहीं हुई है कि जिन आदिवासियों युवकों का माओवादियों के विद्रोह के दमन में प्रयोग किया जा रहा है, वे यह काम करने के लायक हैं या नहीं। भारत सरकार ने इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया कि ये युवक किन खतरों का सामना करेंगे, उनकी सेवा-शर्तें क्या हैं यानी क्या उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण मिला है। इसका का यह रवैया बिल्कुल ही अनुचित है। इसके हलफनामे से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि यह एसपीओ की नियुक्ति में अपनी बहुत ही सीमित भूमिका मानती है। इसके अनुसार, इसका संवैधानिक दायित्व सिर्फ यह है कि वह किसी राज्य के लिए एसपीओ की अधिकतम संख्या तय करे, ताकि वह यह तय कर पाए कि इससे उस पर कितना आर्थिक बोझ पड़ेगा। इसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं है कि राज्य सरकारें इसके द्वारा दिए गए पैसे का किस तरह उपयोग करती हैं। अदालत में दिए गए अपने हालिया बयान में काफी देर बाद भारत सरकार ने यह कहा कि वह ''राज्य सरकारों के लिए कुछ 'सुझाव' जारी करेगी।'' इसमें उनसे यह कहा जाएगा कि ''वे एसपीओ की भर्ती में ज्यादा सावधानी से जाँच-पड़ताल और प्रमाणीकरण करें, प्रशिक्षण के स्तर को सुधारें

और मानवाधिकारों के बारे में भी बताएँ...।'' हम इससे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इसने इन मसलों पर अपनी जिम्मेदारियों से मुँह फेर लिया था। अभी भी यह इन मसलों पर अपने दायित्व को सिर्फ राज्य सरकारों को सुझाव जारी करने तक ही सीमित कर रही है। इससे हमें यह नहीं लगता कि यह इस बुरी सामाजिक स्थिति को खत्म करने के लिए जरूरी कदम उठाना चाहती है। दरअसल, सच्चाई यह है कि इस स्थिति को उत्पन्न करने में इसने अनमने तरीके से महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

**43.** अब हमारे सामने यह बात साफ हो चुकी है कि याचिकाकर्त्ताओं का यह दावा सही है कि भारत सरकार की सहमति से छत्तीसगढ़ सरकार ने हजारों आदिवासी युवकों को माओवादियों/नक्सलवादियों से सशस्त्र संघर्ष करने के लिए एसपीओ के रूप में नियुक्त किया है। खुद छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार द्वारा दाखिल किए गए हलफनामे से यह बात सामने आती है। दरअसल, छत्तीसगढ़ सरकार ने यह दावा किया है कि आदिवासी एसपीओ की भर्ती सिर्फ जगह को पहचानने, खुफिया सूचनाएँ एकत्रित करने और स्थानीय कानून और व्यवस्था कायम रखने जैसे काम के लिए की गई है; ये काम सीधे संघर्ष वाले काम नहीं हैं। लेकिन यह दावा गलत है। असल में इन एसपीओ को माओवादियों/नक्सलवादियों के खिलाफ सीधे संघर्ष में शामिल किया गया है। खुद छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार ने यह स्वीकार किया है कि सुदूर गाँवों के युवकों को एसपीओ के रूप में भर्ती किया गया है। इन युवकों को राहत शिविरों और इन गाँवों में काम करने के लिए नियुक्त किया गया है। हलफनामे में यह भी स्वीकार किया गया है कि इन्हीं जगहों पर माओवादियों ने हजारों बार हमले किए हैं। इससे इस बात का साफ संकेत मिलता है कि इस तरह के हर हमले में एसपीओ को माओवादियों से सीधी लड़ाई करनी पड़ सकती है। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि भारत सरकार और छत्तीसगढ़ सरकार ने यह दावा किया है कि माओवादियों ने हजारों नागरिकों को 'पुलिस का मुखबिर' बताकर मार डाला है। इसलिए यह कहना गलत है कि कभी-कभार, इनकी असली भूमिका की जानकारी होने पर या दुर्घटनावश ही माओवादियों का हमला होगा। सच्चाई यह है कि एसपीओ माओवादियों/नक्सलवादियों का पहला निशाना होंगे। दरअसल, नए नियमों ने स्थिति को और खराब ही किया है। इन नियमों में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि 'एसपीओ के रूप में नियुक्त व्यक्ति को उस क्षेत्र की विशिष्ट समस्या को नियंत्रित और खत्म करने के लिए पुलिस की मदद करने में समर्थ होना चाहिए।' किसी क्षेत्र की विशिष्ट समस्या में आतंकवादी/चरमपंथी गतिविधियों को भी शामिल किया गया है। इस बात का कहीं भी स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि उनका उपयोग सिर्फ 'नॉन कॉम्बैटेंट' या

अयोधी (ऐसे काम जिसमें सीधी लड़ाई न करनी पड़े) कामों के लिए किया जाएगा, जिससे उन पर चरमपंथियों/आतंकवादियों के हमले का सीधा खतरा नहीं रहेगा।

**44.** हमारा यह मानना है कि याचिकाकर्त्ताओं का यह आरोप भी सही है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए हजारों युवकों की जिंदगी को बहुत ज्यादा खतरा है क्योंकि उन्हें छत्तीसगढ़ में माओवादियों/नक्सलवादियों के विद्रोह के दमन के काम में लगाया गया है। इस बात का स्पष्ट प्रमाण यह है कि छत्तीसगढ़ सरकार ने अपने हलफनामे में निराश करने वाले लहजे में यह दावा किया है कि इस खूनी लड़ाई में अब तक 173 एसपीओ ने 'अपनी जिंदगी कुर्बान की है।' इस बात को नोट किया जाना चाहिए कि वर्ष 2004 से 2011 के बीच छत्तीसगढ़ में माओवाद विरोधी कार्रवाईयों के दौरान सीएपीएफ के 538 जवान मारे गए। यह भी गौरतलब है कि छत्तीसगढ़ में नियमित सुरक्षा बलों के कुल 40 बटालियन हैं। दूसरी ओर, इसी अवधि के दौरान अमूमन बहुत कम पढ़े-लिखे कुल 173 आदिवासी युवक मारे गए। मोटे तौर पर, एक बटालियन में 1000 से 1200 तक सुरक्षाकर्मी होते हैं। इसका मतलब यह है कि औपचारिक सुरक्षाकर्मियों के 45000 से 50000 की संख्या में तकरीबन 538 लोगों की मौत हुई है। यह अपने-आप में एक चिंता और दुख का विषय है क्योंकि यह संघर्ष अभी भी जारी है। इस संदर्भ में यह बात भी गौर करने लायक है कि पिछले साल तक एसपीओ की संख्या कुल 3000 ही थी (अब यह संख्या बढ़कर 6500) हो गई है। ऐसे में मारे गए एसपीओ की संख्या (174) का अनुपात तुलनात्मक रूप से बहुत ज्यादा है। यह बात बहुत ही शर्मनाक है। औपचारिक सुरक्षा बलों की तुलना में एसपीओ के मौत की ऊँची दर का सिर्फ यही अर्थ निकल सकता है कि एसपीओ आमने-सामने की लड़ाई में लगे रहे हैं; या फिर एसपीओ के रूप में अपने काम के कारण उन्हें ज्यादा खतरनाक परिस्थितियों में रहना पड़ता है; चूंकि इनकी संख्या या ताकत औपचारिक सुरक्षा बलों जितनी नहीं है इसलिए इनकी पर्याप्त सुरक्षा नहीं होती है।

**45.** हमारे सामने यह बात भी पूरी तरह से साफ है कि माओवादी विद्रोह का सामना करने के लिए इन स्थानीय युवकों के उपयोग की नीति भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से तैयार की गई है। छत्तीसगढ़ में भी इसी नीति को लागू किया गया है। यहाँ दाँतेवाड़ा और छत्तीसगढ़ के दूसरे जिलों में आदिवासी युवकों को मौत के मैदान में मरने के लिए झोंक दिया गया है। छत्तीसगढ़ सरकार का यह दावा है कि वह इन युवकों को विद्रोह के दमन में भाग लेने के लिए प्रशिक्षण देती है। लेकिन माओवादी विद्रोह अब तक का सबसे लंबा विद्रोह है; मुमकिन है कि यह अब तक का सबसे खूनी आंतरिक विद्रोह भी हो; इस बात में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि एसपीओ को इस विद्रोह सामना करने के लिए

पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। विद्रोह के दमन के आधुनिक तरीकों में परिष्कृत विश्लेषणात्मक साधनों, आँकड़ों के विश्लेषण और निगरानी आदि की आवश्यकता होती है। बहुत सी रिपोर्टों, और खुद राज्य के दावे के मुताबिक माओवादियों ने खुद को वैज्ञानिक तरीके से तैयार किया है और उनके पास बेहतर हथियार हैं। खुद छत्तीसगढ़ सरकार ने यह माना है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त युवकों में से अधिकांश या तो पूरी तरह अशिक्षित हैं या उन्होंने बहुत कम स्कूली शिक्षा हासिल की है। वह इन युवकों से यह उम्मीद करती है कि वे दो महीने के समय में अपने भीतर विश्लेषणात्मक क्षमता का विकास करें, कानूनी अवधारणों और ज्ञान के दूसरे परिष्कृत आयामों को जानें। यह बिल्कुल हैरत में डालने वाली बात है कि छत्तीसगढ़ सरकार यह भी मानती है कि दो महीने का यह प्रशिक्षण उन्हें माओवादियों के विद्रोह के दमन में भाग लेने लायक बना देता है।

46. छत्तीसगढ़ सरकार ने खुद यह कहा है कि आदिवासी युवकों की एसपीओ के रूप में भर्ती के दौरान ''पाँचवी पास युवकों को वरीयता दी जाती है।'' इसका सीधा-सा मतलब यह है कि जिन लोगों को एसपीओ के रूप में भर्ती किया गया है, उनमें से कुछ या अधिकांश ने पाँचवीं क्लास तक की पढ़ाई भी नहीं की है। यह बात पूरी तरह साफ है कि नए नियमों के अंतर्गत भी छत्तीसगढ़ सरकार इसी तरह की सीमित शिक्षा पाए युवकों को ही एसपीओ के रूप में भर्ती करेगी। यह अपने आप में हैरतंगेज है कि इसके बाद छत्तीसगढ़ सरकार यह कहती है कि उसने भर्ती किए गए एसपीओ से यह उम्मीद की थी कि वे आईपीसी, सीआरपीसी, इविडेंस एक्ट, माइनर एक्ट आदि विषयों को अच्छी तरह जानें। इससे भी ज्यादा हैरत छत्तीसगढ़ सरकार के इस दावे से होती है कि उसने इन युवकों को एक घंटे की अवधि वाली 24 पीरियड में इन सभी विषयों के बारे में जानकारी दे दी। छत्तीसगढ़ सरकार आगे यह भी दावा करता है कि उन्हें अतिरिक्त 12 पीरियड में मानवाधिकारों की अवधारणा और 'भारतीय संविधान के अन्य प्रावधानों' के बारे में भी पढ़ाया गया। इसके इस दावे से भी आश्चर्य होता है कि इसने उन्हें पुलिस के काम के दौरान वैज्ञानिक और फोरेंसिक के उपयोग के बारे में 6 पीरियड में शिक्षा दी। छत्तीसगढ़ सरकार नए नियमों के संदर्भ में यह भी दावा करता है कि 'एसपीओ के बेहतर प्रशिक्षण की समय-सारणी तैयार करने के पीछे मुख्य मकसद यह है कि उन्हें स्थानीय आदिवासियों द्वारा झेली जा रही समस्याओं के बारे में ज्यादा संवेदनशील बनाया जाए।' यह माना गया प्रशिक्षण का समय एक महीना बढ़ा देने पर इस लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। यह उन युवकों के बारे में योजना है, जिन्होंने पाँचवीं कक्षा तक पढ़ाई की है और जिनमें से कुछ ने इतनी पढ़ाई भी नहीं की है।

47.हम यह मानते हैं कि ये दावे पूरी तरह से अविश्वसनीय हैं। यदि सिर्फ तर्क के लिए हम यह मान भी लें कि प्रशिक्षण के दौरान इस तरह के बातों की शिक्षा दी गई, तो भी कोई विवेकशील व्यक्ति यह नहीं मानेगा कि आदिवासी युवकों के पास इन विषयों को पढ़ने और समझने की बौद्धिक क्षमता है; और इन्हें समझकर वे माओवादियों के विद्रोह के दमन के लिए चल रहे आंदोलन में शामिल होने के लिए जरूरी दक्षता हासिल कर लेंगे। ऐसा न मानने का बड़ा कारण यह है कि इनमें से कुछ युवकों ने पाँचवीं कक्षा तक पढ़ाई की है और कुछ ने इतनी पढ़ाई भी नहीं की है।

48.छत्तीसगढ़ सरकार ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त हुए बहुत से आदिवासी युवकों को हथियार और इन्हें चलाने के लिए जरूरी साजो-समान दिए गए हैं। हम यह जानते हैं कि बहुत से एसपीओ को नहीं, बल्कि अधिकांश एसपीओ को हथियार दिए गए हैं। नए नियमों से यह भी स्पष्ट है कि इन्हें भविष्य में भी हथियार दिए जाते रहेंगे। छत्तीसगढ़ सरकार का यह दावा है कि उन्हें सिर्फ आत्म-सुरक्षा के लिए इस तरह के हथियार उपलब्ध कराए जाते हैं। लेकिन इन आदिवासियों युवकों की शिक्षा और इन्हें दिए जाने वाले प्रशिक्षण के स्तर को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनके पास इतनी विश्लेषणात्मक या संज्ञानात्मक दक्षता नहीं होती है कि ये आत्म-सुरक्षा से जुड़े पेचीदा समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को समझ पाएँ। इनके लिए इस बात को समझना भी मुश्किल है कि यदि आत्म-सुरक्षा की अवधारणा से थोड़ा सा भी अलग हटकर हथियार का प्रयोग किया गया तो उन्हें बहुत सी कानूनी परेशानियों या गंभीर अपराध के आरोपों का सामना करना पड़ सकता है। मान लीजिए कि हम सिर्फ तर्क के लिहाज से स्वीकार कर लेते हैं कि इन युवाओं को खुफिया या गुप्त सूचनाएँ एकत्रित करने के काम में लगाया गया है; इस तरह का काम करने से भी वे माओवादियों के संभावित हमले के निशाने पर आ जाते हैं। वे एक ऐसी अस्थिर स्थिति में आ सकते हैं जहाँ उनके लिए यह तय करना मुश्किल हो कि आत्म-सुरक्षा के लिए फायरिंग और अनावश्यक फायरिंग के बीच क्या अंतर है। कई बार इस संबंध में बहुत ही सूझ-बूझ से फैसला करने की जरूरत होती है। उनके शैक्षिक स्तर को देखते हुए यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि उनके पास इस तरह का फैसला करने की दक्षता नहीं होगी।

49.छत्तीसगढ़ सरकार यह दावा करती है कि वह सिर्फ उन्हीं युवाओं को एसपीओ के रूप में काम दे रही है जो स्वेच्छा से इस तरह की जिम्मेदारी लेने के लिए आगे रहे हैं। इसने यह भी दावा किया है कि आगे आने वाले बहुत से युवक या उनका परिवार नक्सली हिंसा का शिकार रहा है या फिर वे अपने घर-परिवार को नक्सली हिंसा से बचाना चाहते हैं। यदि

हम यह मान लेते हैं छत्तीसगढ़ सरकार का यह दावा सही है, तो भी हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि किस तरह ये कारक छत्तीसगढ़ सरकार के नैतिक अपराध को कम करते हैं; या फिर एसपीओ के रूप में नियुक्त हुए युवकों के मानवाधिकारों के उल्लंघन के तथ्य को कमजोर करते हैं।

50. पहली और सबसे प्रमुख बात यह है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए आदिवासी युवकों की शिक्षा का स्तर बहुत ही नीचे है। इन्हें तथाकथित रूप से अपनी सुरक्षा के लिए हथियार दिए दिए जाते हैं। हम तार्किक रूप से कभी भी यह कल्पना नहीं कर सकते हैं कि वे यह समझते हैं कि हथियार लेकर विद्रोह के दमन की गतिविधियों में भाग लेने का क्या मतलब है और इसके क्या निहितार्थ हैं; हम यह भी नहीं मान सकते हैं कि वे अनुशासन संहिता के बारे में जानते हैं या उन्हें यह पता होता है कि कब उनकी गतिविधियाँ आपराधिक गतिविधियों में तब्दील हो जाती हैं। आधुनिक न्याय-संहिता के अंतर्गत हमें इस बात का अनुमान लगाना होगा कि उनके पास उन जटिल अवधारणाओं को समझने के लिए कितनी स्वतंत्र इच्छा और संकल्प-शक्ति है; इस संदर्भ में हमें उनकी स्थिति पर भी ध्यान देना होगा। यानी क्या उन्हें दिया जाने वाला प्रशिक्षण उनके द्वारा किए जा रहे काम के लिए पर्याप्त है। हमें ऐसी स्थिति नहीं मिली जिसमें एसपीओ के रूप में नियुक्त होने वाले युवक इस काम के लिए अपनी सूचित सहमति- यानी सारे पहलूओं के बारे को समझकर सहमति देते हों। इसलिए सिर्फ इन युवकों के अठारह साल से ऊपर होने के आधार पर हम यह नहीं मान सकते हैं कि इन्होंने अपनी मुक्त इच्छा और संकल्प-शक्ति से एसपीओ बनने का फैसला किया है।

51. इसके अलावा, यह एक तथ्य है कि इन युवकों से बहुत से बदले की भावना से भरे हो सकते हैं और इनके अंदर बहुत ज्यादा गुस्सा हो सकता है। इनकी इस स्थिति के कारण इन्हें विद्रोह के दमन की गतिविधियों में शामिल नहीं करना चाहिए। इन्हें ऐसी जिम्मेदारियाँ दी जानी चाहिए, जिसे वे पूरा कर सकें। पहली बात तो यह है कि इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि माओवादियों के तरीके तेजी से परिष्कृत या बेहतर होते जा रहे हैं। ऐसे में, विद्रोह के दमन की गतिविधियों में ऐसे लोगों को शामिल किया जाना चाहिए जो ठंडे दिमाग के हों। इनका आचरण ऐसा होना चाहिए कि ये शांत तरीके से वर्तमान घटनाक्रमों और भविष्य की रणनीतियों पर विचार कर सकें। गुस्से और नफरत की भावना होने पर इस तरह से शांत विश्लेषण करने की क्षमता का विकास नहीं किया जा सकता है। दूसरा, यह बात भी गौरतलब है कि गुस्सा और नफरत की भावनाएँ व्यक्ति को हर किसी की नजर में शक के दायरे में ला देती हैं। छत्तीसगढ़ सरकार के हलफनामे में इस बात का

उल्लेख किया गया है कि एसपीओ के रूप में इन आदिवासी युवकों का एक प्रमुख काम माओवादियों और उनसे हमदर्दी रखने वाले लोगों की पहचान करना है। वे अपनी मानसिक अवस्था सही होने पर ही इस को काम सही तरीके से कर सकते हैं। यह मुमकिन है कि कोई एसपीओ स्थानीय दुश्मनी और सामान्य सामाजिक टकरावों के कारण दूसरे व्यक्तियों को माओवादी घोषित कर दे। मान लीजिए कि कोई एसपीओ बहुत ज्यादा धौंस जमा रहा हो और कुछ अन्य व्यक्ति उसके खिलाफ अपनी भावनाएँ व्यक्त करे दें। ऐसे में यह मुमकिन है कि यह एसपीओ उन्हें माओवादी या माओवादी समर्थक घोषित कर दे। यह बात तय है कि इससे उन गाँवों का माहौल पूरी तरह खराब हो जाएगा। इससे निर्दोष लोगों के मानवाधिकारों का बहुत ज्यादा उल्लंघन होगा। इस कारण और भी ज्यादा लोग राज्य के खिलाफ हथियार उठाएँगे।

**52.** जिन आदिवासियों युवकों को एसपीओ बनाया गया है, उनमें से बहुत से लोगों के खिलाफ हिंसा हुई है या उन्होंने अपने नजदीकी सगे-संबंधियों और समाज में दूसरे लोगों के साथ हिंसा होते देखा है; इस कारण इन लोगों का पहले से ही अमानवीकरण हो गया है। गहरे गुस्से और नफरत की भावना के रहने का मतलब है कि अमानवीकरण की प्रक्रिया नियमित रूप से जारी है। हमारे संविधान में राज्य को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह समाज में हर किसी की भलाई की चिंता करेगा। इस तरह की चिंता करने वाले राज्य और एक जिम्मेदार समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे हालात तैयार करे जिससे ये लोग सामान्य जिंदगी की ओर वापस आएँ और उनके भीतर से गुस्सा नफरत तथा बदला लेने की भावना खत्म हो। छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा इस तरह की भावनाओं का प्रयोग विद्रोह के दमन की गतिविधियों के लिए किया जा रहा है। इसमें इन युवाओं की जिंदगी पर बहुत ज्यादा खतरा रहता है। यह एक बेहतर समाज बनाने के मानकों के खिलाफ है। कुछ भ्रमित नीति-निर्माताओं ने इस बात की वकालत की है इस तरह की अमानवीय संवेदनाओं का उपयोग माओवादियों के खिलाफ लड़ाई में किया जाना चाहिए। इस तरह के विचार गहरे संवैधानिक चिंता का विषय होने चाहिए और इनकी तीखी संवैधानिक निंदा की जानी चाहिए।

**53.** छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार द्वारा दाखिल किए गए हलफनामे से यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि आदिवासी युवकों को एसपीओ के रूप में भर्ती करने का एक मुख्य कारण जमीनी स्तर पर पर्याप्त औपचारिक सुरक्षा बलों की कमी है। छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार- दोनों ही एसपीओ की भर्ती से इस कमी को दूर करना चाहते हैं। हमने पहले भी यह कहा है कि राज्य द्वारा अपनाई गई सामाजिक-आर्थिक नीतियाँ ही सबसे बड़ी

समस्या हैं। निजीकरण की नीति का एक अर्थ यह भी है कि राज्य इस नीति के कारण उत्पन्न होने वाली सामाजिक अशांति के नियंत्रण की क्षमता के विकास के लिए पर्याप्त वित्त नहीं देना चाहता है। उसने इसके लिए वित्तीय संसाधन देने के काम से खुद को वास्तविक रूप से और विचाराधारात्मक स्तर पर अलग कर लिया है। इसलिए यह माओवादियों के विद्रोह के दमन की कार्रवाईयों में एसपीओ के रूप में आदिवासी युवकों का उपयोग कर रहा है। इन युवकों की शिक्षा बहुत ही कम है। इनके पास इस तरह की खतरनाक गतिविधि से जुड़े विभिन्न पहलूओं को समझने के लिए जरूरी दक्षता और विश्लेषणात्मक साधनों का अभाव है। इन सबके के बावजूद राज्य द्वारा एसपीओ के रूप में इनका इस्तेमाल किया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि उसे इनके प्रभावकारी होने या न होने की चिंता नहीं है। इसी तरह, इससे यह भी पता चलता है कि संवैधानिक मूल्यों पर वित्तीय संसाधनों का मुद्दा हावी हो गया है।

**54.** छत्तीसगढ़ सरकार यह दावा करती है कि वह आदिवासी युवकों को 'रोजगार' देकर जीविका के साधन बना रही है और इस तरह वह संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गए मूल्यों को बढ़ावा दे रही है। तथ्य यह है कि छत्तीसगढ़ सरकार बहुत कम पढ़े युवकों को विद्रोह के दमन की ऐसी गतिविधियों में लगा रही है जहाँ उनकी जान को खतरा है। हम यह समझने में पूरी तरह असमर्थ हैं कि इसे जीविका के साधन उत्पन्न करने के रूप में कैसे देखा जा सकता है। इस तरह की सोच और आदिवासी युवकों का विद्रोह के दमन की कार्रवाईयों में उपयोग यह दिखाता है कि छत्तीसगढ़ सरकार की नजर में उनकी जिंदगी का कोई मोल नहीं है। यह उनकी मानवीय गरिमा को भी अपवित्र करता है।

**55.** अब हमारे सामने यह बात स्पष्ट हो चुकी है, और सच्चाई यह है कि खुद छत्तीसगढ़ सरकार ने भी यह कहा है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए आदिवासी युवकों को इस आधार पर हथियार दिए गए हैं कि 'कानूनी रूप से' एसपीओ का पुलिस फोर्स का पूर्ण सदस्य माना जाता है। इनसे यह उम्मीद भी की जाती है कि ये पुलिस फोर्स के सदस्य की तरह ही अपने कर्त्तव्य निभाएँ, इससे जुड़े बोझ में साझीदार बने और इसके लिए बनी अनुशासन संहिता का पालन करें। इन कर्त्तव्यों और दायित्वों में अपने जान की बाजी लगा देने का कर्त्तव्य भी शामिल है। फिर भी, भारत सरकार और छत्तीसगढ़ सरकार इन्हें सिर्फ एक 'मानदेय' देने लायक ही मानती हैं; और इनका यह दावा है कि ऐसा करके वे अनुच्छेद 21 का पालन कर रही हैं और आदिवासी युवकों के बीच जीविका के नए साधन उत्पन्न कर रही हैं। इन एसपीओ से एक पुलिस अफसर जितना ही काम करने की उम्मीद की जाती है, वे फोर्स से जुड़े सभी बोझों में साझीदारी करते हैं और इसकी अनुशासन

संहिता का भी पालन करते हैं। यहाँ तक कि पुलिस फोर्स के किसी सामान्य सदस्य की तुलना में वे अपनी जान को ज्यादा जोखिम में डालते हैं। हम यह समझने में बिल्कुल ही असमर्थ हैं कि इसके बावजूद इन्हें सिर्फ एक 'मानदेय' ही क्यों दिया जाता है।

56.इन आदिवासी युवकों की एसपीओ के रूप में नियुक्ति विद्रोह के दमन की कार्रवाई में भाग लेने के लिए की जाती है और इनकी नियुक्ति अस्थायी प्रकृति की होती है। दरअसल, इनकी नियुक्ति एक साल के लिए होती है। इसके बाद, इन्हें एक बार में एक साल का विस्तार दिया जा सकता है; इस हिसाब से यह कहा जा सकता है कि इनके काम को कम समय का विस्तार ही मिलता है। छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा नए सिरे से तैयार किए गए नियमों के अनुसार, इन्हें सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस (या एसपी) बिना कोई कारण बताए बर्खास्त कर सकता है। इस तरह की नियुक्ति की अस्थायी प्रकृति बहुत गंभीर चिंता का विषय है। छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार ने इस बात को स्वीकार किया है कि छत्तीसगढ़ में 1980 के दशक से ही माओवादी गतिविधियाँ जारी हैं; और ऐसा लगता है कि पिछले एक दशक में ये गतिविधियाँ बहुत ज्यादा बढ़ गई हैं। छत्तीसगढ़ राज्य ने यह भी स्वीकार किया है कि इसने एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए आदिवासी युवकों को हथियार दिए हैं। इसका कारण यह है कि माओवादियों से इनकी जान को बहुत ज्यादा खतरा है। यह बताया गया है कि माओवादी साधारण नागरिकों को भी 'पुलिस का मुखबिर' बताकर उनकी हत्या कर देते हैं। स्पष्टत: ऐसी हालात में तार्किक रूप से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एसपीओ के रूप में नियुक्त हुए ये आदिवासी युवक विशेष रूप से माओवादियों के निशाने पर रहेंगे। इसका कारण यह है कि ये इस बात की सूचना देते हैं कि कौन माओवादी या माओवादियों का समर्थक है। इसके अलावा, वे किसी स्थान के बारे में जानकारी देते हैं, मार्गदर्शक के रूप में काम करते हैं और किसी खास इलाके के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। छत्तीसगढ़ सरकार इस बारे में कुछ भी नहीं कहती है कि माओवादियों के विद्रोह के दमन में अपनी भूमिका निभाने के बाद आखिर ये युवक अपनी हिफाजत कैसे करेंगे या राज्य ने इनकी विशेष सुरक्षा के लिए क्या प्रावधान किए हैं। निश्चित रूप से, इन युवकों को अपना कार्यकाल खत्म होने पर पुलिस को अपने हथियार वापस करने होंगे। इसका मतलब यह होगा कि ये युवक पूरी तरह से असहाय होंगे, जिससे माओवादी या इनसे दुश्मनी रखने वाला कोई भी शख्स इन्हें आसानी से अपना निशाना बना लेगा। छत्तीसगढ़ राज्य ने यह भी बताया है कि अब तक नियुक्त किए गए कुल एसपीओ में से 1200 एसपीओ को अनुशासनहीनता और ड्युटी में लापरवाही करने के कारण बर्खास्त किया गया है। यह अपने-आप में बहुत बड़ी संख्या है, क्योंकि पिछले साल

छत्तीसगढ़ राज्य में एसपीओ की संख्या सिर्फ 3000 ही थी, अब यह संख्या 6500 हो गई है। स्पष्टत: अनुशासनहीनता या ड्युटी में लापरवाही के कारण भर्ती किए लोगों में से 20 प्रतिशत से लेकर 40 प्रतिशत तक लोगों को बर्खास्त करना पड़ा। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि चयन की सारी नीति, व्यवहार और यहाँ तक कि चयन की पूरी कसौटी ही अपने-आप में गलत है। इस तरह की नीतियों को जारी रखने का नतीजा यह होगा कि इस तरह के बहुत सारे आदिवासी युवकों के एसपीओ के रूप में नियुक्ति के तुरंत बाद ही माओवादी/नक्सलवादी उन्हें मारने का फैसला कर लेंगे। एसपीओ के रूप में अस्थायी नियुक्ति खत्म हो जाने के बाद राज्य उन्हें बीच भँवर में छोड़ देगा और उनकी जिंदगी खतरे में रहेगी।

57. ऊपर जिन बातों का वर्णन किया गया है उसे सिर्फ व्यर्थ निराधार कल्पना नहीं माना जा सकता है। छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा बताए गए तथ्य और परिस्थितियाँ ही हमें इस नतीजे की ओर ले जाती हैं। लेकिन यह दुखद कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। इसके कारण स्थिति और ज्यादा बुरी होने लगती है। इसका कारण यह है कि ये एसपीओ जिन इलाकों में माओवादियों के विद्रोह के दमन में लगे होते हैं, वहाँ के सामाजिक ताने-बाने को जबर्दस्त खतरे में डाल देते हैं।

58. हमने छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार से विशेष रूप से और बार-बार यह पूछा कि हजारों युवकों से हथियार कैसे वापस लिए जाएँगे। इन दोनों की तरफ से ही इस बारे में अभी तक कोई जवाब नहीं दिया गया है। मान लीजिए कि एसपीओ के रूप में इन युवकों का कार्यकाल खत्म हो जाता है। इसके बाद इनकी सुरक्षा का कोई पुख्ता इंतजाम नहीं किया जाता है; और ताकत की जोर से इनके बंदूक आदि इनसे वापस लेने की कोशिश की जाती है। ऐसे में, इस बात की पूरी संभावना है कि ये युवक इन्हें वापस करने से मना कर देंगे। इसका नतीजा यह होगा कि हमारे पास बड़ी संख्या में हथियारबंद युवा होंगे। वे अपनी जान बचाने के लिए और कानून के डर से इधर-उधर भागते फिरेंगे। यह भी पूरी तरह मुमकिन है कि इसके बाद वे राज्य के ही खिलाफ हो जाएँ या फिर कम-से-कम इन हथियारों का प्रयोग सुरक्षा बलों के खिलाफ करके अपनी हिफाजत की कोशिश करें; अपनी जीविका और गुजारे के लिए वे लूटने का काम भी शुरू कर सकते हैं। इस तरह, ये तीसरे मोर्चे (थर्ड फ्रँट) के रूप में इन इलाकों में समाज और लोगों के लिए खतरनाक हो जाएँगे।

59. नागरिक समाज के समूहों और मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं ने लगातार यह कहा है कि आदिवासी युवकों की एसपीओ की रूप में नियुक्ति से मानवाधिकारों का हनन बहुत ज्यादा

बढ़ा है। गौरतलब यह कि कभी इन एसपीओ को कोया कमांडो या सलवा जुडूम का नाम दे दिया जाता है। मानवाधिकार आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया है कि एसपीओ और सुरक्षा बलों के द्वारा कई दफा लूट, आगजनी और हिंसा की घटनाएँ अंजाम दी गई हैं। हम यह मानते हैं कि नियंत्रण न होने की वजह से ही इस तरह की घटनाएँ होती हैं। खासतौर पर इन मामलों में एसपीओ की गतिविधियों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य और नैतिक प्राधिकार का अभाव दिखता है। बहुत कम पढ़े-लिखे आदिवासी युवकों को एसपीओ के रूप में नियुक्त करने और उन्हें हथियार देने से समाज में दूसरे लोगों के मानवाधिकारों को खतरा उत्पन्न हो गया है और भविष्य में भी यह खतरा बना रहेगा।

60. ऊपर कही गई बातों के आधार पर हम यह मानते हैं कि बहुत कम पढ़े-लिखे आदिवासी युवकों की एसपीओ के रूप में नियुक्ति करने और उन्हें विद्रोह के दमन के काम में लगाने से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन हुआ है और यह उल्लंघन जारी रहेगा। इन युवकों के पास पहले से पर्याप्त शिक्षा नहीं होती है। इस कारण ये माओवादियों के विद्रोह के दमन से जुड़ी कार्रवाईयों के विभिन्न पहलूओं को समझने में असमर्थ होते हैं। इनके पास इतना ज्ञान या विश्लेषण करने की इतनी क्षमता नहीं होती है कि ये एसपीओ के रूप में प्रभावकारी तरीके से काम कर पाएँ।

61. इस पूरी प्रक्रिया में संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हुआ है। नियमित फोर्स के सुरक्षाकर्मियों की शिक्षा का स्तर तुलनात्मक रूप से काफी अच्छा होता है। इस कारण, वे विद्रोह के दमन की गतिविधियों से जुड़ी बातों को अच्छी तरह समझते हैं। इन्हें इसके लिए ज्यादा बेहतर प्रशिक्षण भी मिलता है और अपनी शैक्षिक पृष्ठभूमि के कारण ये प्रशिक्षण का पूरा फायदा उठा पाते हैं। स्पष्टत: एसपीओ के रूप में काम करने वाले आदिवासी युवकों और नियमित फोर्स के सुरक्षाकर्मियों की स्थिति में बहुत ज्यादा अंतर होता है। लेकिन दोनों को एक जैसी जोखिम का सामना करना पड़ता है। इससे साफ है कि इस पूरी व्यवस्था में असमान लोगों को समान मानकर व्यवहार किया जा रहा है। इसके अलावा, चूंकि आदिवासी युवकों को बहुत ही कम शिक्षा मिली होती है, इसलिए उनके पास इतनी बौद्धिक क्षमता नहीं होती है कि वे प्रशिक्षण का फायदा उठा पाए। इसलिए विद्रोह के दमन की गतिविधियों में प्रभावकारी तरीके से भाग लेने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इन युवकों को इस काम में लगाने का फैसला पूरी तरह से अतार्किक, मनमाना और स्वेच्छाचारी फैसला है।

62. आदिवासी युवकों को एसपीओ के रूप में नियुक्त करने के फैसले से अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन हुआ है। अमूमन राज्य द्वारा यह दावा किया जाता है कि ये युवक अपनी इच्छा से

एसपीओ बनते हैं और विद्रोह के दमन की कार्रवाई में शामिल होते हैं। लेकिन इतनी कम शिक्षा प्राप्त युवक यह नहीं समझ सकते हैं कि इस काम में उन्हें किस तरह के खतरों का सामना करना पड़ सकता है, इस तरह के खतरों का सामना करने के लिए कैसी दक्षता चाहिए और इस तरह के उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए कौन से जरूरी फैसले करने होते हैं। छत्तीसगढ़ सरकार का यह दावा है कि इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें उन्हें उनके काम के दायित्वों, खतरों और अनुशासन संहिता आदि के बारे में बताया जता है। चूंकि उनकी शिक्षा का स्तर बहुत कम होता है, जिससे वे प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी सही तरीके से फायदा नहीं उठा पाते हैं। ऐसे में, इन युवकों को माओवादी विद्रोह के दमन के काम में लगाने का मतलब है, इनकी जिंदगी को खतरे में डालना। इसी अदालत ने ओल्गा *टेलिस बनाम बॉम्बे म्युनिसिपल कॉरपोरेशन*[1] केस में यह व्यवस्था दी है कि:

*''जैसा कि मून बनाम इलिनियस केस में फील्ड जे. ने यह कहा है, 'जिंदगी' का अर्थ सिर्फ जानवर के रूप में अस्तित्व कायम रखना नहीं है। यह इससे ज्यादा बड़ी चीज है; और किसी व्यक्ति से उसकी जिंदगी नहीं छीनी जा सकती है। इसका विस्तार जिंदगी का आनंद उठाने के लिए जरूरी सीमाओं और क्षमताओं पर भी होता है।''*

**63.** निश्चित रूप से 'जिंदगी का आनंद उठाने के लिए जरूरी सीमाओं और क्षमताओं' की परिधि में मनुष्यों की गरिमा का सम्मान भी शामिल है। इस संदर्भ में यह बात नोट करना जरूरी है कि चाहे गरीब, अशिक्षित, कम शिक्षित और सही विकल्प का प्रयोग करने की कम क्षमता रखने वाले व्यक्ति ही क्यों न हो- हर किसी की गरिमा का बराबर सम्मान किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 21 के अनुसार, राज्य का यह सकारात्मक दायित्व है कि वह मानवीय गरिमा को बढ़ावा देने के लिए जरूरी कदम उठाए; और कम-से-कम व्यक्ति को इस लायक बनाए कि वह थोड़ी गरिमा के साथ जिंदगी बीता पाए। हमारे संविधान की प्रस्तावना में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि हमारे राष्ट्र का लक्ष्य मानवीय गरिमा को बढ़ावा देना है। राज्य ने माओवादी विद्रोह के दमन की कार्रवाई के लिए बहुत कम शिक्षित आदिवासी युवकों की एसपीओ के रूप में भर्ती की है। अपनी कम शिक्षा के कारण ये इस तरह की भूमिका निभाने के लिए जरूरी दक्षता, ज्ञान और विश्लेषणात्मक तरीकों को सीखने में असमर्थ हैं। स्पष्टत: एसपीओ के रूप में काम करके वे अपनी

[1] (1985) 3 एससीसी 545

जिंदगी को खतरे में डाल रहे हैं। निश्चित रूप से, इससे उनकी मानवीय गरिमा में गिरावट होती है।

64.यह बात साफ है कि कम प्रशिक्षण प्राप्त युवकों को एसपीओ बनाकर विद्रोह के दमन के काम में लगाया गया है। इन्हें माओवादी और गैर-माओवादियों को पहचानने का काम भी दिया गया है और राज्य ने इन युवकों को हथियार भी दिए हैं। निसंदेह इससे समाज के दूसरे लोगों की जिंदगी को खतरा उत्पन्न होगा। यह समाज में बहुत से लोगों को अनुच्छेद 21 में मिले अधिकारों का उल्लंघन होगा।

65.इन आदिवासी युवकों को सिर्फ 'मानदेय' दिया जाता है और इन्हें अस्थायी रूप से कम समय के लिए नियुक्त किया जाता है। यह भी अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। हम ऊपर इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि इन आदिवासी युवकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे नियमित पुलिस अफसरों की तरह ही सारे काम करें। इन पुलिस अफसरों की तरह ये भी खतरनाक परिस्थिति में काम करते हैं। कई मरतबा ये ज्यादा खतरनाक हालात में काम करते हैं और इनकी जिंदगी को ज्यादा खतरा रहता है। लेकिन इन्हें सिर्फ 'मानदेय' दिया जाता है। यह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। दरअसल, यह उनके जीवन को कम मूल्यवान मानने जैसा है। सिर्फ एक कुत्सित सोच या अमानवीय नजरिए वाला व्यक्ति ही इन युवकों की जिंदगी को कम या बिल्कुल ही महत्व न देने की बात को सही साबित कर सकता है। इसके अलावा, इस बात को नोट करने की जरूरत है कि ये युवक बहुत ही गरीब हैं। ये पहले से ही क्रूर सामाजिक व्यवस्था की हिंसा का शिकार हो चुके हैं। इस कारण इनके मन में बहुत ज्यादा गुस्सा और बदला लेने की भावना होती है। इन युवकों को इस तरह के काम में लगाने से इनकी जिंदगी तो खतरे में पड़ती ही है; इसके अलावा, यह इनकी अमानवीय संवेदना का दुरूपयोग करना भी है। यह मानव जीवन की गरिमा और मानवता का उल्लंघन है।

66.ऊपर इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि इन युवकों का एसपीओ के रूप में अस्थायी प्रकृति की नौकरी देकर किसी भी तरह के विद्रोह के दमन के काम में लगाने से इनकी जान जोखिम में पड़ जाती है। एसपीओ के काम से मुक्त हो जाने के बाद भी इन्हें माओवादियों से खतरा बना रहता है। ऐसी स्थिति में, समाज के अन्य व्यक्ति या समूह यहाँ तक कि पूरा समाज ही इस खतरे की चपेट में आ जाता है। स्पष्टत: यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

67.हम ऊपर वर्णित बातों को ध्यान में रखते हुए ही आगे उचित आदेश देंगे। बहरहाल, कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिन पर हमें अभी विचार करना बहुत ही जरूरी है। यह आवश्यकता

इसलिए सामने आई है क्योंकि छत्तीसगढ़ राज्य और भारतीय संघ- दोनों ने यह दावा किया है कि माआवादी हिंसा और माओवादी उग्रवाद का खतरा बहुत ज्यादा बढ़ गया है। ऐसे में लोगों को इस हिंसा से बचाने और इस खतरे से लड़ने के लिए आदिवासी युवकों को एसपीओ के रूप में नियुक्त करना और उन्हें इस विद्रोह के दमन की कार्रवाई में शामिल करना बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक है।

**68.** दरअसल, हम इस बात को मानते हैं कि माओवादी/नक्सलवादी हिंसा के कारण राज्य को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह एक तथ्य है कि ऐसी बहुत सी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ हो सकती हैं या खुद राज्य ऐसी बहुत सी नीतियाँ अपना सकता है जिससे इस तरह की चरमपंथी हिंसा उभरती है। इसके बावजूद, हम हिंसा की अनदेखी नहीं कर सकते हैं। राज्य को उखाड़ फेंकने की कोशिश, इसके एजेंटों की हत्या और निर्दोष नागरिकों के खिलाफ हिंसा किसी भी व्यवस्थित समाज के लिए घातक है। राज्य का यह नैतिक और संवैधानिक दायित्व है कि वह इस तरह के चरमपंथ का विरोध करे और देश के लोगों को सुरक्षा उपलब्ध कराए। जैसा कि हमने पहले बताया है, यह एक बुनियादी जरूरत है। जब न्यायपालिका आतंकवाद और चरमपंथ का मुकाबला करने वाली नीतियों पर सवाल उठाती है, तो उसका मकसद यह नहीं होता है कि वह सुरक्षा चिंताओं में दखल दे। हम यह मानते हैं कि इसके लिए कार्यपालिका के पास विशेषज्ञता और जिम्मेदारी है; और कार्यपालिका विधायिका से निर्देशित और नियंत्रित होती है। न्यायपालिका इस तरह के मसलों में संवैधानिक लक्ष्यों और मूल्यों की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप करती है। वह चाहती है कि समानता और जीवन के अधिकार जैसे मूल अधिकारों की सुरक्षा हो। सच्चाई यह है कि न्यायपालिका के पास इस तरह हस्तक्षेप करने की विशेषज्ञता और जिम्मेदारी है। हाल में, *जी. वी. के. इंडस्ट्रीज बनाम आईटीओ* मामले में दिए गए अपने फैसले में संवैधानिक खण्डपीठ ने यह कहा कि:

*''हमारा संविधान राज्य के विविध अंगों को राष्ट्र के हितों की हिफाजत, कल्याण और सुरक्षा की सकारात्मक जिम्मेदारियाँ सौंपता है....। इन अंगों को राष्ट्र के लक्ष्य को हासिल करने में समर्थ बनाने के लिए इन्हें शक्तियाँ दी गई हैं। न्यायिक पुनराविलोकन की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए दी गई है कि हर अंग अपनी शक्ति का उपयोग संविधान द्वारा तय की गई सीमा के भीतर करे। नतीजन यह भी जरूरी है कि राज्य के विभिन्न अंगों को दी गई शक्तियाँ न्यायिक हस्तक्षेप से इतनी ज्यादा सीमित न हो जाएँ कि वे अपने संवैधानिक जिम्मेदारियों को ही पूरा न कर पाएँ। संविधान की किताब में दी गई, अन्तर्निहित या इससे निकलने वाली शक्तियों को स्वीकार करना*

*ही चाहिए। इसके बावजूद, संविधानवाद का बुनियादी तत्व यह भी है कि राज्य का कोई भी अंग संविधान द्वारा तय की गई सीमा से ज्यादा शक्ति का दावा नहीं कर सकता है। **न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह उस्तरे की धार पर चले। यानी सरकार की दूसरी सहायक शाखाओं पर विचार करते वक्त न्यायिक संयम आवश्यक है; लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं होना चाहिए कि वह उस्तरे की धार पर चलने के अपने संवैधानिक दायित्व को बिल्कुल ही त्याग दे।**''*

69. जब हमने वर्तमान मसले पर सुनवाई की तो हम इस बात के प्रति बहुत जागरूक थे कि हमें उस्तरे की धार पर चलने की जरूरत है। हम तथ्यों और संवैधानिक मूल्यों का अनुसरण करके निष्कर्ष तक पहुँचे हैं। संविधान का बुनियादी मूल्य यह है कि राज्य के सभी अंगों का यह दायित्व है कि वे संवैधानिक जिम्मेदारी के दायरे में रहकर अपना काम करें। यह कानून का सर्वोच्च शासन है।

70. यह सच है कि आतंकवाद और/या चरमपंथ से बहुत से देश पीड़ीत हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्य और दुख की बात है कि भारत भी पिछले कई दशकों से इसका शिकार रहा है। संवैधानिक लोकतंत्रों में आतंकवाद और/या चरमपंथ के खिलाफ लड़ाई में किसी भी कार्यकुशल या सक्षम साधन का उपयोग नहीं किया जा सकता है। संवैधानिक लोकतंत्र जिन मूल्यों औ लक्ष्यों से निर्देशित होते हैं और जिन्हें हासिल करना चाहते हैं उनके बारे में सिर्फ कार्यकुशलता के आधार पर फैसला नहीं किया जा सकता है। कुछ साधनों को किसी तात्कालिक या विशिष्ट समस्या का सामना करने के लिए कार्यकुशल माना जा सकता है। लेकिन यह मुमकिन है कि यह अन्य संवैधानिक मूल्यों को नुकसान पहुँचाए। यह भी हो सकता है कि यह उस समस्या को उत्पन्न करने वाले मुद्दों को हल करने में कोई मदद न करे; इससे बहुत नकारात्मक नतीजा भी सामने आ सकता है। इसलिए, यह जरूरी नहीं है कि सभी कार्यकुशल साधन सच में कार्यकुशल ही हों। यह भी जरूरी नहीं है कि ये संवैधानिक रूपरेखा के भीतर काम करने वाले कानूनी साधन ही हों। इजरायल के सुप्रीम कोर्ट के पूर्व अध्यक्ष अहरॉन बराक (Ahron Barak) ने आतंकवाद के खिलाफ युद्ध के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए यह लिखा कि:

*'' यह लड़ाई मानकीय शून्य में नहीं हो रही है...। यह कथन गलत है कि 'जब तोप गरजते हैं, तो चिंतक खामोश हो जाते हैं।' सिसरो का यह कथन आधुनिक हकीकत के अनुरूप नहीं है कि युद्ध के दौरान कानून खामोश हो जाते हैं। मेरी इस मान्यता की बुनियाद में सिर्फ राजनीतिक और*

*मानकीय हकीकत का व्यवहारिक नतीजा ही नहीं है। इसकी बुनियाद ज्यादा गहरी है। यह अपनी जिंदगी के लिए लड़ाई लड़ रहे एक लोकतांत्रिक राज्य और इसके खिलाफ खड़े हुए आतंकवादियों की उग्रता के बीच अंतर की अभिव्यक्ति है। राज्य कानून के नाम पर और कानून को कायम करने के नाम पर लड़ता है। आतंकवादी कानून के खिलाफ लड़ता है और इसके उल्लंघन को अपने पक्ष में भुनाता है। आतंक के खिलाफ युद्ध भी कानून का संघर्ष है। कानून का यह संघर्ष उन लोगों के साथ है जो इसके खिलाफ उठ खड़े हुए हैं।''*

**71.**हमने पहले भी यह कहा है कि माओवादी/नक्सलवादी हिंसा को सिर्फ कानून और व्यवस्था के समस्या मानते हुए इसके खिलाफ लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है। यानी सरकार इसमें किसी भी साधन का उपयोग नहीं कर सकती है। दरअसल, मूल समस्या की जड़ राज्य द्वारा अपनाई गई सामाजिक–आर्थिक नीतियों में निहित है। राज्य ने इन नीतियों को एक ऐसे समाज में लागू किया है जो पहले से ही अंतहीन और भयावह गैर–बराबरी से पीड़ीत है। इसलिए, माओवादियों/नक्सलवादियों के खिलाफ लड़ाई लोगों के दिमाग और दिल पर नैतिक, संवैधानिक और कानूनी प्राधिकार स्थापित करने की लड़ाई है। हमारा संविधान राज्य के लिए एक दायरा तय करता है। राज्य को इसी दायरे के भीतर कार्य करना है। यानी इसी के भीतर उसे अपने प्राधिकार का प्रयोग करना है, इसे आगे बढ़ाना है और इसे ज्यादा गहराई देनी है। यदि राज्य इस दायरे से बाहर जाकर कदम उठाता है, तो उसका यह कार्य गैरकानूनी होगा। यह राज्य और संविधान के नैतिक और कानूनी प्राधिकार को जोखिम में डालता है। हम इस अदालत में इस बात से नावाकिफ नहीं हैं कि नागरिकों और राज्य को किस सीमा तक चरमपंथी गतिविधियों का सामना करना पड़ रहा है। बहरहाल, हमारे संविधान ने मानवीय विवेक को महत्व देते हुए इस बात की चेतावनी दी है कि साध्य साधनों का औचित्य साबित नहीं कर सकते हैं। साध्यों को हासिल करने के लिए व्यक्तियों की सामूहिक शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। इन साध्यों की सबसे बुनियादी और अभिन्न बात यह है कि इन्हें राज्य सत्ता के प्रयोग के साधनों को संवैधानिक सीमाओं के भीतर रखना चाहिए। यदि किसी अन्य तरीके से काम किया जाता है तो वह गैरकानूनी होता है। फिलिप बॉब्बिट (Philip Bobbit) ने अपनी पुस्तक *टेरर एंड कॉन्सेंट- द वॉर फॉर द ट्वेयन्टी फर्स्ट सेंचुरी* में यह चेतावनी दी है कि ''यदि हम कानून की परवाह किए बिना

[1] पेंग्विन बुक्स (एलेन लेन) (2008).

काम करते हैं, तो हम प्रभावकारी कार्य के फायदों को खो देते हैं।'' जब तोप गरज रहे हों, तो कानून खामोश नहीं रह सकता है।

**72.** चरमपंथियों द्वारा किए जा रहे गैरकानूनी गतिविधियों के खिलाफ कानून को संविधान के दायरे के भीतर तार्किक रूप से प्रतिक्रिया देनी चाहिए। खासतौर पर, जिन इलाकों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हालात के कारण उत्पन्न हुए असंतोष की बदौलत चरमपंथी अपना आधार बनाते हैं, वहाँ इस बात का और भी ज्यादा ख्याल रखा जाना चाहिए। इसके लिए दो-स्तरीय कदम अपनाने की जरूरत है: (i) सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से जरूरी सुधार करने के लिए नीतियाँ अपनाई जानी चाहिए, जो इस तरह की चरमपंथी हिंसा को जन्म देने वाले सामाजिक असंतोष को कम करें; और (ii) एक सुप्रशिक्षित और कानून को पेशेवर तरीके से लागू करने की क्षमता और ताकत विकास, जो संविधान की सीमा के भीतर कार्य करें।

**73.** एसपीओ जैसे किसी कैडर का निर्माण ऊपर बताए गए दोनों ही उपायों के विपरीत है। इसमें आदिवासी युवकों को मानदेय देकर अस्थायी रूप से एसपीओ बनाया जाता है। ये एसपीओ या तो पूरी तरह अशिक्षित होते हैं या बहुत कम पढ़े-लिखे होते हैं। इनमें से बहुतों के मन में गुस्सा, नफरत और बदला लेने की भावना भरी रहती है। इन लोगों को माओवाद/नक्सलवाद के खिलाफ लड़ाई में लगा दिया जाता है। ऊपर हमने बहुत विस्तार से इन पहलूओं की विवेचना की है। हम यहाँ एक अन्य जरूरी बात जोड़ना चाहते हैं। राज्य का यह कहना है कि अभी उसके पास औपचारिक पुलिस संरचना के भीतर पर्याप्त क्षमता और ताकत नहीं है। इसलिए, इस कमी से निपटने के लिए उसने 'मानदेय' देकर अस्थायी रूप से एसपीओ को काम पर लगा लिया है। यह जरूरत अपने-आप में एक दीर्घकालिक जरूरत है। नतीजतन, राज्य इस तरह का काम करके नागरिकों को सुरक्षा मुहैया कराने के अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी को त्याग रहा है। राज्य का यह संवैधानिक दायित्व है कि अच्छी तरह से प्रशिक्षित और हथियार आदि साधनों से लैस पुलिस की पर्याप्त संख्या को स्थायी रूप से नागरिकों की सुरक्षा के लिए तैयार रखे। ये राज्य के बुनियादी काम हैं। राज्य विभिन्न तरह के अस्थायी कैडरों को बनाकर अपनी इस जिम्मेदारी से मुक्ति नहीं पा सकता है। निश्चित रूप से, यह काम उन सुरक्षाकर्मियों को करना चाहिए जो पूरी तरह से राज्य के नियंत्रण में हों, जिनकी नौकरी स्थायी हो और जिन्हें संविधान के दायरे या चौहद्दी के भीतर अपना कर्त्तव्य निभाने का सही प्रशिक्षण मिला हो। इन सुरक्षाकर्मियों के काम की शर्तें भी संवैधानिक सीमाओं के अनुरूप होनी चाहिए। छत्तीसगढ़ में एसपीओ के मामले से जुड़े

वर्तमान केस में यह बिल्कुल ही स्पष्ट है कि इसमें संवैधानिक सीमाओं का बहुत ज्यादा अतिक्रमण या उल्लंघन हुआ है।

**74.** भारत सरकार और छत्तीसगढ़ सरकार– दोनों ने ही छत्तीसगढ़ में एसपीओ के उपयोग को सही ठहराने की कोशिश की है। इन दोनों ने यह तर्क दिया है कि माओवादी/नक्सलवादी गतिविधियों और हिंसा से प्रभावकारी तरीके से निपटने में एसपीओ की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है और ये 'फोर्स की ताकत को बहुत ज्यादा बढ़ाते हैं।' पीछे हमने इनके द्वारा दिए जाने वाले इस तरह के तर्कों की विस्तार से विवेचना की है। हमने इस बात पर भी जोर दिया है कि इसका वर्तमान और भविष्य के समाज पर बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। राज्य द्वारा अपनाई गई ये नीतियाँ अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21– दोनों का ही उल्लंघन करती हैं। इन नीतियों से छत्तीसगढ़ में एसपीओ के रूप में नियुक्त किए गए आदिवासी युवकों को अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में अधिकारों का उल्लंघन होता है। इसके अलावा, इनसे इन इलाकों में रहने वाले लोगों के मूल अधिकारों का भी उल्लंघन होता है। किसी फोर्स का प्रभावकारी होना उसके संवैधानिक औचित्य के बारे में फैसला करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। छत्तीसगढ़ में माओवादियों/नक्सलवादियों के खिलाफ एसपीओ कितने प्रभावकारी रहे हैं? छत्तीसगढ़ के वर्तमान हालत को देखकर यह कहा जा सकता है कि इस सवाल का जवाब पूरी तरह से नकारात्मक न भी हो, तो भी अनिश्चित जरूर है। हम सिर्फ अपने तर्क के लिहाज यह मान लेते हैं कि माओवादियों/नक्सलवादियों के खिलाफ एसपीओ प्रभावकारी रहे हैं; लेकिन हमें यह भी मानना होगा कि संवैधानिक निष्ठा और सामाजिक व्यवस्था को बहुत गहरी चोट पहुँचाकर यह संदेहास्पद प्रभाव हासिल किया गया है। वर्तमान मामले में राज्य जिस 'फोर्स' का दावा कर रहा है, वो बहुत ही सख्त या निर्दय है, इसने संविधान की शक्तियों का गहरी चोट पहुँचाई है। संवैधानिक निष्ठा इस तरह के 'फोर्स' (या बल) या इसको बहुत ज्यादा बढ़ाने की इजाजत नहीं देती है। दरअसल, यह ऐसा करने की इजाजत नहीं दे सकती है और न ही इसे इजाजत देना चाहिए। संवैधानिक मर्यादा मनमाने तरीके से चुने गए और अस्पष्ट तरीके से उपयोग में लाये जाने वाले शब्दों के प्रयोग से जुड़ा मसला नहीं है। मसलन 'फोर्स की ताकत को बहुत ज्यादा बढ़ाने वाले' (force multipliers) जैसे शब्दों का प्रयोग करके संवैधानिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। यह अदालत मानती है कि इस तरह के तर्कों की तुलना में संवैधानिक फैसला और नागरिक स्वतंत्रताओं की सुरक्षा ज्यादा पवित्र और महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

**आदेशः**

**75.**हम यह आदेश देते हैं कि:

(i) छत्तीसगढ़ सरकार तुरंत हर तरह के काम में और किसी भी तरीके से एसपीओ (विशेष पुलिस अधिकारी) के प्रयोग को बंद करे। छत्तीसगढ़ सरकार माओवादी/नक्सलवादी गतिविधियों को नियंत्रित करने, इसका प्रतिरोध करने, इसे प्रभावहीन बनाने या इसे पूरी तरह खत्म करने जैसे उद्देश्यों के लिए भी इनका उपयोग नहीं कर सकती है।

(ii) भारतीय संघ की सरकार आगे से कभी भी माओवादी/नक्सलवादी समूहों के विद्रोह के खिलाफ कारवाई करने के लिए एसपीओ की भर्ती के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई आर्थिक मदद नहीं देगी।

(iii) छत्तीसगढ़ सरकार इस बात को सुनिश्चित करे कि एसपीओ को दिए गए सभी अग्नेयास्त्र (यानी हथियार) और इनके साथ दी गई गोलियाँ वगैरह वापस ली जाएँ। यहाँ अग्नेयास्त्र शब्द में हर तरह की क्षमता वाली बंदूकें, राइफल, लांचर आदि शामिल हैं।

(iv) छत्तीसगढ़ सरकार पहले एसपीओ के रूप में काम करने वाले लोगों की जिंदगी की हिफाजत के लिए संविधान के प्रावधानों के अनुरूप सभी जरूरी कदम उठाएगी। यह उन लोगों की हिफाजत का भी इसी तरह ध्यान रखेगी, जिनके एसपीओ के रूप में चयन या नियुक्ति के अभी शुरूआती आदेश ही जारी हुए थे। छत्तीसगढ़ सरकार इनकी माओवादियों/नक्सलवादियों समेत हर तरह की ताकतों से सुरक्षा करेगी।

(v) छत्तीसगढ़ सरकार ऐसे हर समूह की गतिविधियों को रोकने के लिए समुचित कदम उठाएगी, जो किसी भी तरह से कानून को अपने निजी हाथों में लेना चाहता है तथा असंवैधानिक या किसी दूसरे तरीके से काम करके किसी भी व्यक्ति के मानवाधिकारों का उल्लंघन करता है। इसमें सलवा जुडूम और कोया कामांडो समेत इस तरह से काम करने वाले दूसरे समूह भी शामिल हैं। छत्तीसगढ़ सरकार सलवा जुडूम या कोया कमांडो के रूप में प्रसिद्ध समूहों द्वारा पूर्व में किए गए सभी आपराधिक मामलों की अपूर्ण या

अपर्याप्त जाँच को ठीक से पूरा कराएगी। यह इनके खिलाफ प्राथमिकी या एफआईआर दर्ज करेगी और तेजी से मुकदमा चलाएगी। छत्तीसगढ़ सरकार को ये कदम उठाने चाहिए लेकिन उसका काम यहीं तक सीमित नहीं होना चाहिए।

76.हम यह मानते हैं कि ऊपर वर्णित बातों के अलावा नियमित पुलिस अफसरों का काम करने के लिए एसपीओ की नियुक्ति पूरी तरह से असंवैधानिक है। सिर्फ *छत्तीसगढ़ पुलिस कानून 2007* के धारा 23 (1) (एच) और धारा 23 (1) (आई) में बताए गए कामों के लिए ही एसपीओ की नियुक्ति हो सकती है। हम यह भी मानते हैं कि पहले माओवादियों/नक्सलवादियों के खिलाफ एसपीओ के रूप में किसी भी तरह की कार्रवाई में लगे आदिवासी युवकों की नियुक्ति एसपीओ के रूप में हो सकती है। यह नियुक्ति *छत्तीसगढ़ पुलिस एक्ट 2007* के धारा 23 (1) (एच) और 23 (1) (आई) में बताए गए कामों को करने के लिए ही हो सकती है। लेकिन इसमें शर्त यह है कि एसपीओ के रूप में माओवादियों/नक्सलवादियों और वाम-चरमपंथ के खिलाफ कार्रवाई के दौरान या अपने व्यक्तिगत या निजी रूप में उन्होंने कोई ऐसा काम न किया हो जिससे दूसरे लोगों के मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ हो; इसके अलावा, ये एसपीओ के रूप में एक अनुशासन संहिता या आपराधिक कानूनों के अंतर्गत काम कर रहे थे। इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनकी गतिविधियों से इनका उल्लंघन न हुआ हो।

## IV

## मार्च 2011 में हुई तथाकथित घटना के बारे में स्वामी अग्निवेश द्वारा लगाए गए आरोपों से संबंधित मामले में आदेश

77.अब हम स्वामी अग्निवेश द्वारा लगाए गए आरोपों की ओर ध्यान देंगे। इन्होंने मोरापल्ली, टाडमेटला और तिमापुरम गाँवों में हुई हिंसा के संदर्भ में आरोप लगाए हैं। इन्होंने यह आरोप लगाया है कि जब मार्च 2011 में स्वामी अग्निवेश और अन्य लोग हिंसा का शिकार हुए इन गाँवों के पीड़ित लोगों को मानवीय सहायता देने के लिए जा रहे थे, तो उनके खिलाफ तथाकथित रूप से हिंसक घटनाएँ हुईं। यह हिंसा तथाकथित रूप से एसपीओ, कोया कमांडो और/या सलावा जुडूम के सदस्यों द्वारा की गई।

**78.** इस संदर्भ में हम यह बताना चाहते हैं कि छत्तीसगढ़ सरकार ने इस मामले के संदर्भ में एक हलफनामा दाखिल किया है। हम बहुत ही निराशा के साथ यह कहना चाहते हैं कि इस हलफनामे में इस तरह की हिंसा की घटनाओं के बारे में संवैधानिक जवाबदेही को स्वीकार नहीं किया गया है। इसकी बजाय इसमें सिर्फ अपने-आप को सही साबित करने की कोशिश की गई है। छत्तीसगढ़ सरकार का हलफनामा खुद इस बात को स्वीकार करता है कि ऊपर जिन तीन गाँवों का जिक्र किया है, वहाँ हिंसा की घटनाएँ हुई हैं। इसके अलावा, इसमें यह भी माना गया है कि स्वामी अग्निवेश और उनके साथियों के खिलाफ बहुत से लोगों ने हिंसा की। हम यह बताना चाहते हैं कि छत्तीसगढ़ सरकार ने यह प्रस्ताव दिया है कि वह उच्च न्यायालय के रिटायर या वर्तमान जज की अध्यक्षता वाली जाँच आयोग बनाने के लिए तैयार हैं। बहरहाल, हम यह मानते हैं कि ये उपाय नाकाफी हैं। हमने पीछे छत्तीसगढ़ के वर्तमान हालात की विस्तार से विवेचना की है। हमारा यह मानना है कि इस स्थिति में इस तरह के जाँच-आयोग से कानून के भीतर कोई संतोषजनक नतीजा सामने नहीं आएगा। इस अदालत ने पहले भी यह कहा है कि इस तरह के जाँच-आयोग ज्यादा-से-ज्यादा भविष्य में इस तरह की घटनाओं को रोकने के उपाय बता सकते हैं। लेकिन वे कानून की जरूरत को पूरा नहीं करते हैं: अर्थात् नागरिकों के खिलाफ हुए अपराध की पूरी तरह जाँच होनी चाहिए और जिन लोगों ने जुर्म किया है उन्हें कानून के द्वारा सजा मिलनी चाहिए (देखें *संजय कुमार बनाम हरियाणा राज्य*[1])। इसलिए हम निम्नलिखित आदेश दे रहे हैं।

**<u>आदेश:</u>**

**79.** हम केन्द्रीय जाँच ब्यूरो यानी सीबीआई को यह आदेश देते हैं कि वह इस मामले की जाँच का काम अपने हाथों में ले। सीबीआई निम्नलिखित बातों के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों के खिलाफ उचित कानूनी कार्रवाई करे:

(i) दाँतेवाड़ा या इसके नजदीकी इलाकों में स्थित मोरापल्ली, टाडमेटला और टीमापुरम गाँव में मार्च 2011 को तथाकथित रूप से हुई हिंसा की घटनाएँ;

(ii) मार्च 2011 में छत्तीसगढ़ राज्य की यात्रा के दौरान स्वामी अग्निवेश और उनके साथ जाने वाले लोगों के खिलाफ हुई हिंसा की तथाकथित घटनाएँ।

---

[1] (2005) 5 एससीसी 517

**80.**हम केन्द्रीय जाँच ब्यूरो यानी सीबीआई को यह निर्देश भी देते हैं कि वह 6 हफ्ते के भीतर अपनी प्राथमिक रिपोर्ट पेश करे।
हम छत्तीसगढ़ सरकार और भारत सरकार को यह निर्देश देते हैं कि वे आज दिए गए सभी आदेशों और निर्देशों के बारे में आज से 6 हफ्ते के भीतर अनुपालन या कॉम्पालायंस रिपोर्ट पेश करें।

**81.**सितम्बर 2011 के पहले हफ्ते में इस मामले पर आगे निर्देश जारी किया जाएगा।

........................................... **न्यायमूर्त्ति**
**[ बी. सुदर्शन रेड्डी ]**

........................................... **न्यायमूर्त्ति**
**[ सुरिन्दर सिंह निज्जर ]**

5 जुलाई 2011